वर्ष १०, अंक ४

श्रीकृष्णाय नमः

जनवरी

मार्गशीर्ष १९९२

वार्षिक चन्दा ३)

सम्पादक—

म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

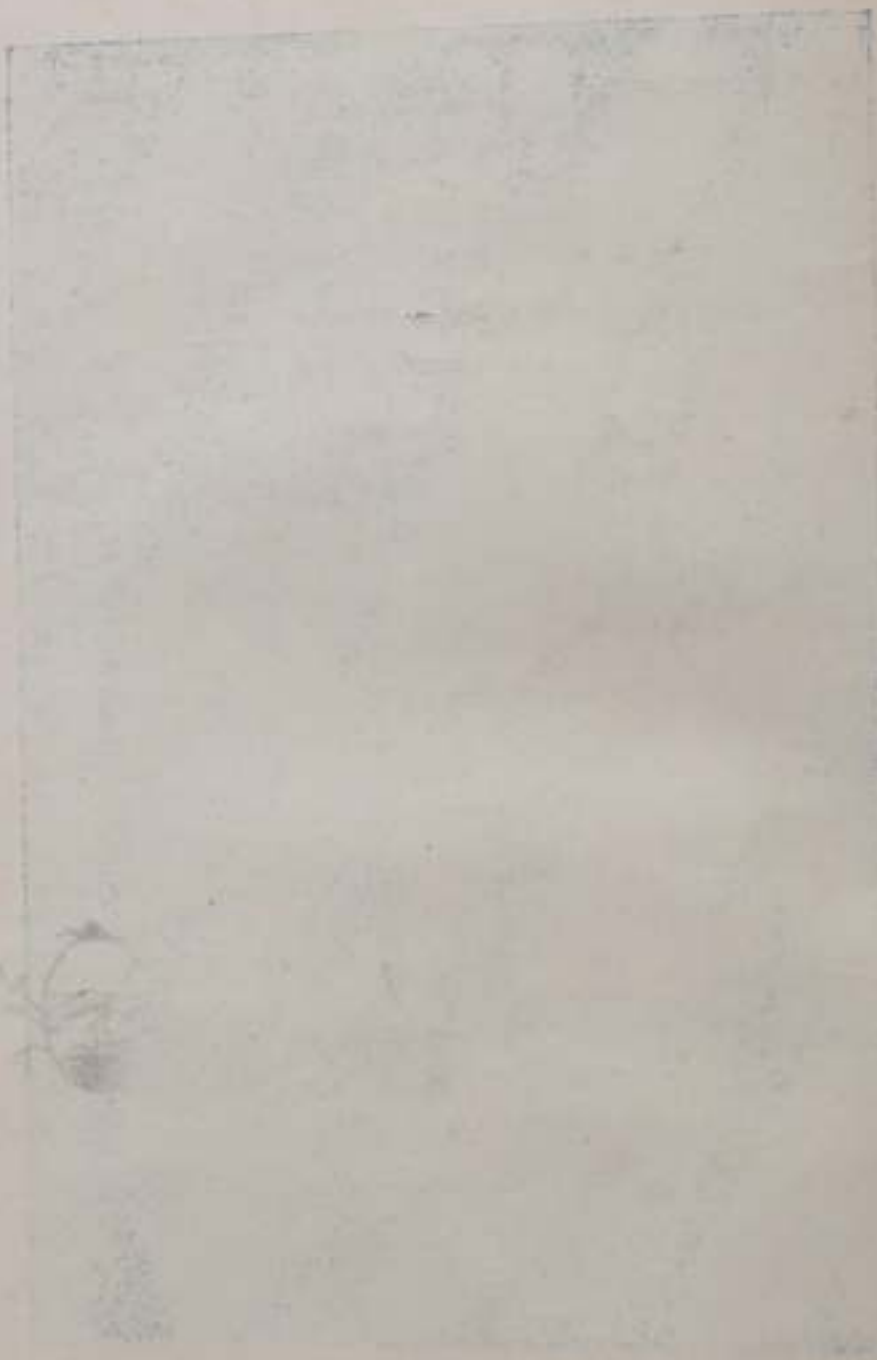

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश	... ...	९४
२.	दूसरों के लिये प्रार्थना	[ले० श्री दुर्गाप्रसाद	९४
३.	भक्ति	[ले० श्री हरिवरण 'मराल'	९५
४.	प्रेमा-भक्ति	[ले० श्री मक्खन मथुरा प्रसाद जी	९७
५.	बसन्त बनि आवैगो	[रचयिता श्री अक्षयसिंह वर्मा अलवर	१०४
६.	दीनोद्धार	[रचयिता श्री स्वामी लक्ष्मणाचार्य वाणी भूषण	१०५
७.	प्रयाग पंच क्रोशी परिक्रमा	[ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी हंस तीर्थ	१०७
८.	उरहना	[लेखक-श्री गंगा विष्णु पाण्डेय "विष्णु"	११७
९.	सत्संग-सभा	(दुर्गाप्रसाद गुप्ता)	११८
१०.	यही है इच्छा हे भगवान्	(दुर्गाप्रसाद गुप्ता)	१२०
११.	योग-साधन	[ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती	१२१
१२.	भजन	... ...	१२४

भक्ति के नियम

१. भगवान की भक्ति का प्रचार करना, गौ रक्षा और इसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से ३) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
डा० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्मसिंह भावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१०१)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१)
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ० बी० ई० रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई महुधा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	२५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	१५)
सूबेदार मेजर दीपचन्द जी	८)
मंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	५)

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जागृत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष १० | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, माह ता० १ जनवरी १९३५ | अंक ४ पूर्ण संख्या ११२

वेदोपदेश

याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातमीषथुः।
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥

नेतृद्वय, जिन उपायों द्वारा शयु, अत्रि और पहले मनुको गमन-मार्ग दिखाने की इच्छा की थी और स्यूमरश्मि ऋषिके लिये उनके शत्रुके ऊपर तीर चलाया था, अश्विद्वय, उन उपायों के साथ आओ।

याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना।
याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥

जिन उपयों द्वारा पठर्वा नामके राजर्षि शरीर-बलसे संग्राम में काष्ठ-युक्त प्रज्वलित अग्नि की तरह दीप्तिमान हुए थे और जिन उपायों द्वारा युद्ध-क्षेत्र में शर्यात राजाकी रक्षा की थी, अश्विद्वय, उन उपायों के साथ आओ।

दूसरों के लिये प्रार्थना

अपने लिये तो कुछ प्रार्थना कर न कर,
बना रह कृतघन इसमें न डर है।
किन्तु विधवाओं गायों भूखों रोगियों के लिये,
मुंह रहता आंसुओं से जिनका कि तर है॥
या कि असहाय दयापात्र निर्बलों के लिये,
याकि देशभक्त जेल जिनका कि घर है।
नित्य सायं प्रातः कर प्रार्थना सदा ही तू,
मनुजपने के नाते भार तुझ पर है॥

दानिशिरोमणि त्रिभुवन पति भगवान् विश्वम्भर से प्रार्थना करने पर ऐसा कौनसा पदार्थ है जो भक्त को नहीं मिलता, धर्म, अर्थ काम मोक्ष तक प्राप्त करने के लिए भगवत्प्रार्थना सर्वोपरि सुलभ साधन है। फिर सांसारिक संकटों को मिटाने के लिये इससे बढ़कर तो उपाय होगा ही क्या?

अपने हित के लिए-दुःखों से छुट्टी पाने के लिए-तो सभी प्रार्थना करते हैं, परन्तु धन्य हैं वे सज्जन जो दूसरों के लिये प्रार्थना करते हैं। दूसरों के दुःख देखकर सन्तप्त होना और फिर उसको निवारण कराने के लिए भगवान् से प्रार्थना करना, बहुत ऊंचा भाव है 'उदार चरितानांतु वसुधैव कुटुम्बकम्' से भी बढ़ा हुआ दरजा है। ऐसे उदार चरित्र पुरुष तो संसार भरको कुटुम्बवत् ही समझते हैं। परन्तु दूसरों के लिए प्रार्थना करने वाला "आत्मवत् सर्व भूतेषु" ही समझता है। और आत्मवत् समझ कर ही उनके दुःख निवारण के लिए प्रार्थना करता है।

गुसांई जी कहते हैं:-

सन्त हृदय नवनीत समाना, कहा कविन पै कहा न जाना।
निज सन्ताप द्रवै नवनीता, पर सन्ताप सु संत पुनीता॥

"कवियों ने सन्तों को मक्खन के समान कोमल हृदय कहा तो है परन्तु कहना नहीं आया क्योंकि मक्खन तो स्वयं संताप (गरमी) को प्राप्त होकर पिघल जाता है परन्तु सन्त तो दूसरे के सन्ताप (दुःख) को देखकर ही पिघल जाते हैं" दूसरों के दुःख देखकर पिघलने वाले सन्तों को फिर मनुष्य जन्म सार्थक करने के लिये और कोई कर्तव्य बाकी नहीं रह जाता सिवाय इसके कि उनका दुःख दूर करने का भरसक प्रयत्न करें। और परदुःख निवारणार्थ जितने सांसारिक उपाय हैं उन सबकी चरमसीमा भगवत्प्रार्थना है। "क्योंकि विधवाओं, गायों भूखों और रोगियों" का दुःख मिटाने के लिए क्या किसी मनुष्य का प्रयत्न सफल हो सकता है इस संकट को मिटाने की शक्ति तो भगवत्प्रार्थना में ही है। इसकारण प्रत्येक मनुष्य मात्र का कर्तव्य है कि वह नित्य ही पर दुःख निवारणार्थ प्रार्थना किया करे। यह, विश्वरूप भगवान की-जनता जनार्दन की

शुत और निष्काम सेवा है।

> अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनं द्वयम्,
> परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।

'अठारहों पुराणों का सार व्यास जी की दो बातें हैं कि परोपकार करना ही पुण्य और दूसरों को पीड़ा देना ही पाप है।"

अब बताइये जो शुद्ध भाव से परदुःख निवारणार्थ ईश्वर प्रार्थना करता है उससे बढ़कर परोपकारी कौन होगा। वह तो मन वचन और कर्म से परोपकारी है।

> "नित्य सायं प्रातःकर प्रार्थना सदा हित,
> मनुज बने के नाते भार न्यून या है"।

ले० श्री दुर्गाप्रसाद

भक्ति

[ले०—हरिशरण 'मराल']

है अनन्त साधन की सिद्धि,
है तेरी अति व्याप्त प्रसिद्धि।
प्रेम पन्थ में, जग-वपु-श्वास,
तेरे बिन जीवन की आस॥
दुखदायी है बारम्बार,
तू न पास, तो जन्म असार।

२

नर नारायण की मध्यस्थ,
काल-कलेवर रखती स्वस्थ।
चारु हास शुचितम अवदात,
मुक्ति—सरोवर—सद्यस्नात!
विमल वदन रमणीक ललाम,
अयि जीवन-नद-बोधित वाम॥
छवि तेरी लोचन अभिराम,
रमती सदा युगल हृद्धाम।
प्रियतम को करती अनुरक्त,
तथा भक्त को करे अशक्त॥

३

सद्विचार साधन की धूप,
ध्यान-धरोहर के अनुरूप।
तुझे धारणा रखे निदान,
किन्तु, कहां तेरा अनुमान?
कारण तू पहुंचे उस ओर,
जहां गूढ़ रहता चित-चोर।
करती फिर एकान्त विहार,
सहसा होता शान्त विकार,
तब तू, तब जन, उनके नाथ,
लीन एक से हों इक साथ॥
मूक, मग्न बिन ध्वनि के गीत,
मान ज्ञान क्या प्रीति, अप्रीत।
हे उपास्य मन मोहिनि शक्ति,
तू है अप्रतिम शुचि भक्ति॥

४

मानस विमल धवल कैलाश,
हिम सम शुम्भित हो तव पाश।
पड़ें ज्ञान-रवि-किरण गंभीर,
जिससे रिस रिस करदे नीर॥
प्रेम जाह्नवी की उत्स पूर्ति,

जागृत हो तनु में सुस्फूर्त्ति।
जिसका सदा सुलभ सञ्चार,
दुस्तर जीवन का लघु भार॥
तृण सम होने लगे प्रतीत,
सरल भारवाहन की रीत॥

५

अयि मुमुक्षु अवलम्बनि डोर,
मिलता तेरा ओर न छोर।
प्रेम पुरी निर्मल हृद पास,
होता वहीं कहीं तव वास॥
अथवा 'अजर अमर' की बेल,
रख लेती तुझको कर मेल।
किंवा जीवन सरित प्रवाह,
खो देता है तेरी थाह।
अथवा पञ्च महासुर पीन,
कर देते हैं तुझको दीन॥
या ये दुनियां के षट्राग,
बना तुझे देते दुर्भाग।
अथवा तेरी ही यह टेव,
छिपी रहा करती स्वयमेव॥

६

सुख समृद्धि, मुक्ति तरु मूल,
काम, क्रोध उर उठता शूल।
देख तुझे, कर यही विचार,
नष्ट करे तू पञ्च-विकार॥
तेरी है, पूजापति प्रीति,
न्यारी सारे जग से रीति।
तव प्रसाद का यही स्वभाव,
भेद भाव का करे अभाव॥
प्रभु तो बनें दास के दास,
और दास पहुंचे प्रभु पास।
फिर इस अन्तर का भी अन्त,
दास बनें प्रभु के सामन्त॥
गुण-गण भी सम बनें निदान,
जीव नाम का यों अवसान॥

७

भावुकता की सृष्टि अनूप,
तेरे हैं प्रचलित बहु रूप॥
निर्जन बनकी सी कल कूक,
दुरित औषधी रूप अचूक।
और तुझे कहते हैं एक,
राम नाम जपने की टेक॥
अपनी विस्मृति ही तव सार,
कोई कहते अधिक विचार॥
तुलसी, मीरा, नरसी सन्त।
सूर आदि की कीर्त्ति दिगन्त।
छाई तेरे कारण आज।
अतः अमरपन का तव साज॥
किन्तु सभी तेरा सौभाग्य।
कहें एक मत, है वैराग्य॥
यदि असार सारा संसार।
तब होता तेरा विस्तार॥
तेरी लीला का ये श्रेष्ठ।
तो भी वर्णन नहीं यथेष्ठ॥

८

हे विरक्ति विरदावलि स्रोत।
गुण-गण से तू ओत प्रोत॥
तेरा देख हृदय में दीप।
कभी न आता मोह समीप॥
तेरी इक करुणा की कोर।
लाती कितना ज्ञान बटोर॥

तेरी मोदकरी कल्लोल।
कर देती सु स्थिरचित लोल॥
रहे न चञ्चलता आवास।
तेरे रस का जहां विकास॥
फिर अबोध तम का हो नाश।
तू यदि हृदय में करे प्रकाश॥
हो यदि तव विचरण स्वच्छन्द।
रहे न जीवन गति फिर मन्द॥
अतः तुही है जीवन मूरि।
तुझे सराहैं सज्जन भूरि॥

प्रेमा–भक्ति

[ले०—श्री भक्त रत्न मथुरा प्रसाद जी]

(लेखक ने इस लेख में प्रेमा भक्ति को उत्कृष्ट ग्रन्थों के प्रमाण देकर सर्वोपरि सिद्ध किया है, और सबसे बड़ी बात यह है कि अपने ऊपर बीती हुई भगवान् की भक्त वत्सलता की बात कह कर यह विषय और भी स्पष्ट करदिया है। भक्तवर का कथन सत्य है भगवान् ऐसे ही भक्तवत्सल हैं उनकी दयालुता का ध्यान आते ही किसका हृदय गद्गद न होगा। लेखको ध्यान पूर्वक पढ़ कर आनंद लीजिये:—　　　　(सम्पादक)

मद्भक्ता नापवर्गं न च विधिपदवीं।
शंभुसथार्पिनैव, वाञ्छन्त्यण्वोः ॥
कुर्वाणं मम पद्युगले को रसोयं विचित्रः।
चित्ते स्वीये विचार्य्यैव मिह यदुकुले कृष्ण।
बालो हि भूत्वा, पादाङ्गुष्ठं पिबन्वो।
हरतु सदुरितं रक्षताच्छ्रीनिवासः॥

श्री लक्ष्मीपति हरि आपके पापों का नाश आपकी रक्षा करें। जिन्होंने विचार किया कि मेरे भक्त न मोक्ष चाहते हैं न ब्रह्मा या शंकर की पदवी, केवल मेरे चरणों की भक्ति ही मांगते हैं। मेरे चरणों में ऐसा कौनसा विचित्र रस है। इस कारण यदुकुल में कृष्णरूपी बालक बनकर अपने पैर के अंगूठे को मुख में चूंस रहे हैं।

इसमें कुछ संदेह नहीं है कि भक्त केवल हरिचरणों में प्रीति चाहते हैं उसके आगे मुक्ति या ब्रह्मा और शिवकी पदवी को तुच्छ मानते हैं।

वो भक्ति नवधा तो प्रसिद्ध ही है (श्रवणं कीर्तनं विष्णो इत्यादि) उसके उपरान्त प्रेम लक्षणा भक्ति का महत्व बहुत कुछ कहा गया है। वही भक्ति ६४ प्रकार की वर्णन की गई है।

परन्तु सबका सार इस आधे श्लोक में आगया है इसी के समझ लेने की आवश्यकता है।

'तस्यैवाहं ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा'।

अर्थात्-१ उसका ही मैं हूं, २–मेरा ही वह है, ३–वही मैं हूं।

इस तीन प्रकार की भक्ति को भली भांति समझ लेने से जैसे समुद्र घड़े में आजाय, महा गहन भक्ति का विषय सहज ही अवगत हो सकता है।

प्रथम तस्यैवाहम् का वर्णन किया जाता है। महर्षिवाल्मीकिने विभीषण शरणागति के अवसर पर वर्णन किया है कि जब रावण से तिरस्कार पाके

विभीषण आकाशमार्ग से आरहा था जाम्बन्त सुषीव आदि मंत्रियों ने सम्मति दी कि यह राक्षस का भाई है और राक्षस बड़े मायावी होते हैं न जाने यह क्या छल करके कोई बिगाड़ करदे इस कारण इसका कदापि विश्वास करना उचित नहीं है।

उस समय परम दयालु भगवान श्री रघुनंदन महाराज ने कहा कि हे मंत्रियो! आपलोग जो कुछ कहते हैं नीति के अनुसार सब ठीक और उचित ही है। परन्तु मेरा एक प्रणव्रत है उसे आप सुनियेः-

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीत्यभियाचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

अर्थात्-एकबार भी जो शुद्धभाव से ऐसा कहै कि मैं तेरा हूं उस शरण में आये हुये प्राणी को मैं सब भूतों से अभय करदेता हूं।

श्री महाराज यह फरमाही रहे थे कि बीभिषण निकट आपहुंचा आपने झट उठकर उसे छाती से लगा लिया-

प्रिय पाठक गण! विचार कीजिये शरणागति की कितनी ऊंची पदवी है। कि कैसा ही पातकी अत्याचारी जब सच्चे दिलसे हरि चरणों की शरण में आजाय तो भूत मात्र से निर्भय होजाता है। यमराज की भी सामर्थ्य नहीं कि ऐसे हरि शरणागत जीव की तरफ आंख उठाकर भी देख सके। इसी प्रकार भगवद् गीता में जब परम कृपालु लीला पुरुषोत्तम भगवान श्री कृष्णचंन्द्र जी अपने सखा और पूर्ण भक्त अर्जुन को गुप्त रहस्य (सब सद्गति के साधन) समझा चुके यहां तक कि उसने आपका ऐश्वर्यमय विश्वरूप देखना चाहा वो भी दिखादिया। उसके बाद गुप्ततम रहस्य अर्थात् जिससे बढ़कर कोई बात वक्तव्य नहीं हो सकती सिद्धान्त अठारवें अध्याय में यही बतलाया कि-

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

अर्थात् सब धर्मों को छोड़कर एक मेरी शरण में आजा मैं तुझे सब पापों से मुक्त करदूंगा सोच न कर।

श्रीमद्भागवत् में भी उद्धव जी को निज सिद्धान्त भगवान् ने यही शरणागति धर्म का उपदेश किया।

तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम्।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च॥
मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम्।
याहि सर्वात्मभावेन मयास्याकुतो भयः॥

अर्थात् प्रवृत्ति निवृत्ति रूप जितने धर्म सुनने योग्य और सुनेगये सबको त्यागकर सब प्राणधारियों की आत्मा जो एक मैं हूं उसी की शरण में प्राप्त हो और निर्भय होजा-

निदान यह कि श्री वाल्मीकीयरामायण भगवद्गीता और श्रीमद् भागवत् तीनों परम प्रामाणिक और सर्वमान्य ग्रन्थों का सार उपदेश शरणागति सिद्ध हुआ इसी को आत्म निवेदन प्रपत्तिसमर्पण आदि नामों से बोलते हैं।

जिसको सूत्र रूप थोड़े से अक्षरों में बता दिया कि:-

तस्यैवाऽहम्

(नोट-इस शरणागति के ६ अंग हैं और इसका विस्तार बहुत है यहां सारांश वर्णन किया गया है)

अब विचारणीय यह रहा कि भक्त के लिये इससे आगे भी कुछ कर्तव्य और आचरणीय और है या नहीं। तो बताया गया है कि भगवान् की शरण होकर निर्भय बैठजाने का परिणाम ये हुआ कि

अपनी रक्षा का बोझ भार सब भगवत् पर डाल दिया गया-

और वो परम करुणासागर भक्तवत्सल भगवान् अपने शरण में आये हुये दासों के लिये क्या क्या कष्ट सहकर रक्षा में तत्पर होजाते हैं। उदाहरणरूप महा भारत को देखिये कि शरणागत अर्जुन की रक्षा रथवान् बनकर करीगई। प्रल्हाद के लिये अग्नि से तप्त स्तंभ में प्रविष्ट होकर रक्षा करनी पड़ी। द्रौपदी की रक्षानिमित्त चीर रूप होना पड़ा। नामदेव ने महाभयानक प्रेत में उनका दर्शन पाया और जहां जहां भक्तों पर कष्ट आते देखा आपने स्वयं शरीर धारण कर भेला, माधौदास भक्त की लंगोटी तक धोई। और श्रीमुख से आज्ञा भी की है कि-

तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम्।

अर्थात् जो वस्तु प्राप्त नहीं है वो देना और प्राप्त की रक्षा करने का भार अपने ऊपर ले लिया है:-

इस स्थल पर विचारणीय यह है कि जिस जिस किसी से अपना प्यार होता है उसे किसी भय स्थल में जहां तक बन पड़े अलग हटाकर स्वयं कष्ट झेलना उचित है। या अपने प्यारे को खतरे में डालकर दूर होजाना उत्तम और न्याय की बात है:-

यह महापातकी अल्पज्ञ जीव अपने कर्मों के फल अवश्य भोगता है, (प्रारब्ध कर्मणां भोगादेव क्षयः) उस समय रक्षा प्रभु से चाहे और प्रभु निज शरणागत जनकी रक्षा अवश्य करते ही हैं। पुराणादिलिखित अथवा [भक्तमाल में वर्णन किये हुये भक्तवत्सलता के उदाहरण अर्थवाद या रोचक वचन नहीं सब सत्य हैं। तथापि पाश्चात्यशिक्षा के प्रभाव अथवा नये चलाये हुये पन्थों, या कलिकाल की महिमा से श्रद्धा रहित मनुष्यों को विश्वास दिलाने के लिये अपने ऊपर गुजरे हुये एक वृत्तान्त का उदाहरण वर्णन करता हूं। जिससे निश्चय होजायगा कि वर्तमान काल में भी अपने आश्रित जनों पर प्रभु कैसी कृपा करते हैं।

(एक वर्तांव में आया हुआ। भक्त वत्सलता का उदाहरण)

एकबार जयपुर निवासी कई भक्तों ने विचार किया कि बरसाने में राधा अष्टमी पर अरुणोदय के समय श्री लाड़िली जी के दर्शन करें।

इस प्रयोजन से भादों सुदी ६ की रात की गाड़ी से हम सात या आठ मनुष्य रवाने होकर ६ बजे सप्तमी के दिन मथुरा स्टेशन पर उतरे। उस समय कुछ वर्षा होरही थी। गाड़ी इक्के किराये के तलाश किये तो रास्ते में कीचड़ होने के कारण किसी ने बरसाने चलना स्वीकार न किया एक पाल गाड़ी वाले ने इकरार किया। इस शर्त के साथ कि इसमें केवल बिस्तर वगैरा सामान (असबाब) रख लिया जाय और सब पैदल चलें। उसी को धन्यमान हम लोग पैदल चलदिये। मथुरा से गोवर्धन १४मील है वहां ४ बजे पहुंचे वृष्टि हलकी बराबर जारी थी पैरों में जूते न पहन सके दो साधू गवैये हमारे साथ थे वो भजन गाते हुये चले इस कारण मार्ग सुगमता से कटगया। गोवर्धन में मुन्शी लक्ष्मीनारायण भार्गव भरतपुर की तरफ से पुन्य के अध्यक्ष हमारे परिचित थे उनके पास ठैरके कहागया कि कोई प्रबंध सवारी का होजाय तो बरसाने को हमलोग अभी चलदें और सूर्य उदय से पहले पहुंच कर दर्शन करलें उन्होंने गोवर्धन में बहुत ढूंढवाया

वृष्टि होरही थी एक तो यह कारण, दूसरे रात्रि के समय यात्रा में भय किसी गाड़ी वाले ने स्वीकार न किया रातको वहीं निवास हुआ। और रातमें ही इतना होसका कि एक बैल गाड़ी वाले ने प्रातःकाल चलना स्वीकार किया।

अष्टमी के दिन प्रातःकाल हम लोगों ने बिस्तर वगैरा गाड़ी में रखकर फिर पैदल चलना आरंभ किया बरसाना यहां से सात कोस १४ मील है उसकी सीमा पर ३ बजे पहुंच कर एक कूपके निकट ठैर गये और शौचादि कृत्य से निवृत्त होने में घंटा डेढ घंटे के करीब समय लगा। उस समय श्री लाडिली जी महारानी एक संगमर्मर की छत्री में मंदिर के बाहिर पहाड़ पर विराजी हुई दृष्टि में आई समाज हो रहा था। दूरसे देखकर हम सबने विचारा कि अभी एक कोसके करीब चलना और पहाड़ पर चढना है। इस अन्तर में यदि समाज हो चुका और सवारी श्री जी की पधार गई तो इतना श्रम व्यर्थ होगा इसलिये जल्दी से तेज चलना चाहिये ऐसा ही किया गया। परन्तु १४ कोस की यात्रा और नंगे पांउ चलना भीगते हुवे कीचड़ में आने से हम सब दौड़कर पहाड़ पर चढकर समाज में जाकर बैठ तो गये। साष्टांग दंडवत् भी सबने करली परन्तु समाज के विदा होने और सवारी के मंदिर में पधारने के समय हममें किसी से उठकर खड़ा न हुआगया। सबके शरीर बेकार थे उठना और चलकर धर्मशाला तक पहुंचना कैसा हिला तक नहीं जाता था। ऐसा प्रतीत होता था कि शरीर के प्रत्येक रोम में कांटे चुभे हैं।

गुसांई रामचंद्रजी और वल्लभ जी हमारे तीर्थ पुरोहित थे उन्होंने हमारी ऐसी दशा देखकर हमारा डेरा पुराने मंदिर में करा दिया।

मथुरा से दो चौबे भी हमारे साथ होलिये थे और दो नौकर साथ में थे सबका डेरा एक बड़े लम्बे तिबारे में होगया, और मंदिर के दरवाजे में पौली के अंदर ४ कान्स्टेबिल और एक जमादार का डेरा था जो मेले के प्रबंध के लिये सरकार की तरफ से आये थे। हम सब थकावट से बेचैन ऐसे थे कि करवट बदलना कठिन था नींद का कोसों पता नहीं। रात के ११ बजे होंगे। एक मनुष्य ने अचानक 'न जाने किधर से आकर' साधु ओंकारदास के पैरों पर हाथ डाला, वो चौंक उठा और पूछा तुम कौन? उत्तर मिला–कहार, साधु ने पूछा कहां से आया। जवाब मिला कि बरसाने का निवासी है। और यात्रियों की सेवा ही उसका काम है। ओंकार दास ने पैर समेट कर यह कहकर हाथ बढाया कि तुम ब्रजवासी हो हम तुम्हारे पांव छुवें तो उचित है तुमसे पैर नहीं दबवा सकते! ओंकारदास के कहने से अजनबी दूर हट जाता है।

साधु ओंकार की बराबर ही बिस्तर इस शरीर का था तुरन्त उस अपरिचित ने इस शरीर की जंघापर हाथ डाला। 'आहा उस हाथ की कोमलता कैसी थी कही नहीं जा सकती' पूछा गया कौन?

उत्तर–कहारः–

फिर प्रश्न किया गया कहां रहता है कहां से आया और क्या नाम है।

जवाब–मैं डेढ़ बरस से यहां रहता हूं कौम का कहार, भजीटा नाम है। और रामचन्द्र गुसाँई तनख्वाह देते हैं। गंगाबाई भी कभी २ रोटी दे देती है।

बस क्या था मोहका परदा बुद्धिपर पड़गया और खयाल आया कि कहार या नाई की तो इस समय बड़ी भारी आवश्यकता थी। बहुत अच्छा हुआ (हां इतनी बात और रहगई कि उसने यह भी आखिर में कहा था कि सरकार ने मुझे भेजा है। परन्तु यह नहीं पूछा गया कि सरकार कौन)

अब उस भर्जाटा कहार ने शरीर की मालिश करना आरंभ कर दिया। और जैसे कोई पहलवान कुश्ती में थके हुवे के शरीर का मर्दन करता है उसी प्रकार दो ढाई घंटे तक ऐसा दबाया और करवटें बदलवा बदलाकर नस नस की पीड़ा दूर करदी। शरीर इतना हलका और चैन में होगया कि मानों जरा भी सफर नहीं किया गया। गहरी नींद आगई।

इस शरीर की बराबर गोविन्द नारायण सराफ़ का बिस्तर था, वो नौ जवान था, सोगया था. शरीर पर हाथ पड़ते ही चौंका परंतु अधिक बात न होकर उसने शरीर दबाना आरंभ करालिया इतना ही सुनकर कि कहार है और अभी बराबर वाले ने उससे पैर दबाये हैं। दो ढाई घंटे से कम उसकी मालिश में भी समय न लगा होगा।

उसके बाद बिस्तर झूमरलाल जी सराफ का और तदनन्तर पंडित शिवदयाल जी सरस माधुरी का था।

पंडित जी ने उतने ही प्रश्न किये थे जो इस शरीर ने किये अधिक इतना और कहा कि भाई गुशाईं जी का भेजा हुआ प्रसाद धरा हुआ है हमसें किसी से पाया नहीं गया। तुम इसमें से लेलो तो जवाब मिला कि प्रसाद पाकर आया है इच्छा नहीं है।

फिर मुन्शी हीरालाल जी भार्गव और उनके बाद मथुरा निवासी दो चौबों के साथ वार्तालाप होकर वही बरताव होकर सब के सब गाढ निद्रा में सोगये। प्रातःकाल ४ बजे पंडित जी उठे और इस शरीर को संबोधन करके कहा कि अजी मुन्शी जी कहार ने तो गत रात्रि को ऐसा शरीर दबाया कि थकावट का नामो निशान नहीं। उसे कुछ इनाम नहीं दिया। क्या आपने उसे कुछ दिया।

मैंने कहा अजी बड़ी गलती हुई अब जल्दी बुलवाइये। और सब साथी कहने लगे। अजी हमारा शरीर भी उसने दबाकर बड़ाभारी उपकार किया। जरूर इनाम उसको दीजिये।

इसी अवसर में गुशाईं रामचन्द्र भी आ पहुंचे उनसे पूछा, तो वह बड़े अचरज में डूब गये। कहने लगे कि आपतो स्वप्न की बात करते हैं या जाग्रत की बरसाने में तो कोई कहार नहीं न भर्जाटा नाम सुना।

जमादार और सिपाहियों से पूछा तो कहा कि ६ बजे सायंकाल से तीनतीन घंटे चारों ने पहरा दिया और दरवाजा कुफल बंद रहा कोई न आया न गया। रस्ता भी कोई दूसरा नहीं अबतो हम सब अत्यन्त आश्चर्य में डूब कर पछताने लगे। तमाम बरसाना और मेले में त्रयोदशी तक खोज मारा। पता न चला। ऐसी स्थिति में दूसरे दर्जे पर ध्यान दीजिये।

'ममैवांसो' वो मेरा है। अर्थात् १ शान्त २ दास्य ३ वात्सल्य ४ सख्य और ५ सख्यो भाव इन पांचों में चाहे जिस एक भाव को दृढ़ करके ईश्वर से कोई संबन्ध जरूर करलेना चाहिये। और उक

भावों में से किसी एक को दृढता से धारण कर प्रभु की सेवा में तत्पर रहै। यदि दास भाव से प्रभु को स्वामी समझके सेवै अथवा प्रभु में वात्सल्य भाव रखके उन्हें अपना प्राणों से प्यारा पुत्र मानके 'जिस प्रकार वल्लभ कुल में सेवा होती है' अहर्निश इसी चिन्ता में रहै कि प्यारे बालको खूब लाड़ लडाये जांय शीतकाल में शरदी और ग्रीष्म ऋतु में गर्मी से बचाने के लिये अनेक उपचार करता रहै। दिनरात चित्त इसी में लगा रहै। यदि सखा भाव है तो अपने प्राण प्यारे यार को सुख पहुंचाने के यथा साध्य यत्न में सर्वदा तत्पर रहै। सखी भाव है तो प्रियतम को रिझाने में कोई कसर न रहै। और जैसे जार पुरुष में स्त्री आसक्त होकर उसके प्रेम में मतवारी होके लोक लाज कुलकान आदि को त्याग देती और प्यारे से मिलने को तरस्ती और उसकी विरह में तड़पती है ऐसी दशा होजाय यदि दास्य संबंध है तो जैसी सेवा श्री पवन कुमार हनुमानजी ने करके प्रभु को अपने वश में करलिया था और यह वचन श्री रघुवर महाराज ने उनकी शान में उच्चारण किये थे कि-

एकै कस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि मारुते।
शेषाणा मुपकाराणां तथापि ऋणिनो वयम्॥

अर्थात् श्री महाराज आज्ञा करते हैं कि हे मारुत! पवन कुमार तेरे एक एक उपकार के बदले यदि मैं अपने प्राणों को न्योछावर करदूं तो बाकी बचे उपकारों के लिये तो तेरा ऋणि या 'कर-जदार' ही रहूंगा। ओहो धन्य भाग सेवा ऐसी ही वस्तु है कि स्वामी को अपने आधीन करलेती है।

चाहै अपने को दास और प्रभु को सेवक, चाहै प्रभु को अपना अति प्यारा बालक पुत्र, चाहै भगवान् को अपना सच्चा हितू प्यारा सखा, चाहै स्वामी को अपना पति या यार (माशूक) जिस किसी भाव से अपना मानलिया जाय, वो श्रीमुख से आज्ञा कर चुके हैं कि-

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्"।

जो जिस भाव से मेरी शरण मे आते हैं उनको मैं भी उसी भाव से मान कर भजता हूं।

इसलिये सिद्ध हुआ कि 'तस्यैवाहम्' की अपेक्षा से 'ममैवासौ' बहुत ऊंचा दरजा है।

प्रयोजन यह निकला कि केवल शरण में जाकर अपनी रक्षा का भार प्रभुपर डाल कर निर्भय होकर बैठ रहना नहीं चाहिये किन्तु दूसरे दरजे में पहुंच कर उनकी सेवा में प्रीति पूर्वक तत्पर रहना यह बात उत्तम और अत्यावश्यक है।

(३) अब तीसरे दरजे की सैर कीजिये। वो इन दोनों से ऊंचा और इतना भयानक (खतर नाक) भी है कि पतन होजाने की इसमें बड़ी भारी संभावना है।

'स एवाहम्'।

अर्थात् मैं वोही हूं। मुझमें और उसमें कोई भेद नहीं है। अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार जीव और ब्रह्म की एकता (अभेद) और जगत् का माया रचित मिथ्यात्व माना ही गया है। 'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या' जीवो ब्रह्मैव केवलम् और 'तत्वमसि अहंब्रह्मास्मि' इत्यादिक महा वाक्यों द्वारा अद्वैत वादी इसी मतको श्रुति सिद्ध बतलाते हैं। परन्तु भाषा ग्रन्थ विचार सागर आदि के पठन और वाचक ज्ञानियों के जुबानी जमा खर्च से अहं ब्रह्म कहने वाले तो आजकल बहुत दिखाई दे जाते हैं, वास्तव में अपरोक्ष ज्ञानी महात्मा हजारों लाखों में कोई एक बहुत दुर्लभता से मिलेगा।

विवेक वैराग्य आदि साधन संपन्न होकर जिसकी शरीर में आत्म बुद्धि न हो। अहंता ममता से रहित होकर जिसको राग द्वेष न रहा हो सुवर्ण और लोहे पत्थर आदि में समभाव हो। 'सम लोष्टाश्म काञ्चनः' और 'नप्रहृष्येत् प्रियंप्राप्य नोद् विजेत् प्राप्य चा प्रियं' अर्थात् उत्तम और प्रिय पदार्थ पाने से खुशी और दुःखदाई वस्तु से जिसे अप्रसन्नता न होती हो। ऐसा ज्ञानी अपने को ब्रह्म कह सकता है। परंतु आधुनिक वेदान्ती अविद्या ग्रस्त होने पर भी वचन मात्र से अहं ब्रह्म कहकर दुराचार में प्रवृत्त हो जाते और वेद शास्त्र गुरु आदि को मिथ्या कहकर कर्म और उपासना से विमुख रहजाते हैं। वो भ्रष्ट और पतित हो जाते हैं।

'कली वेदान्तिनः सर्वे फाल्गुने बालका इव'।

जैसे बच्चे अश्लील वचन होली के दिनों में बोला करते उसी प्रकार वाचक ज्ञानियों की दशा है, ऐसे लोग (स एवाहम्) कहने के कदापि अधिकारी नहीं।

वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों का तो यही सिद्धान्त है कि जीव और ईश्वर सदा न्यारे न्यारे हैं। जीव सेवक और ईश्वर स्वामी है। जीव अल्पज्ञ और अल्प शक्ति वाला है ईश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान है तथापि अत्यन्त प्रेम दशा प्राप्त होजाने से अभेद प्रतीति होजाती है। जैसे किसी साहूकार का गुमाश्ता या मुनीम जब चिरकाल तक स्वामी की सच्चे दिल और प्रेम से सेवा करके उसका पूरा विश्वास पात्र बन जाता है तो स्वामी की दुकान से अपनी दुकान और ऋणियों से स्वामी के दिये हुये रुपये का तकाजा इन शब्दों से करता है कि अजी हमारी दुकान का रुपया अथवा हमारा रुपया तुम नहीं देते जल्दी चुकाओ। तो ऐसी स्थिति में उसका कथन अनुचित नहीं समझा जाता। इसी प्रकार जीव जब परमात्मा का पूर्ण प्रेमी भक्त बनकर तन्मय हो जाय तो अपनी भौतिक देहका उसे कुछभी अनुसंधान न रहकर ईश्वर के तद्रुप होजाता है और उस स्थिति में 'स एवाहम्' इस वचन को उच्चारण कर सकता है।

गोपियां भगवान के रास में से अन्तर्धान होजाने पर जब किसी उपाय से भगवान् को प्राप्त न कर सकी तो प्रेम के आवेश में तद्रूप होकर स्वयं कृष्ण रूप धारण करके लीला करने लगी उस स्थान में श्री शुकदेव जी ने यह पद दिया है।

'तन्मनस्कास्तदात्मिकाः'।

अर्थात् उनका मन और आत्मा प्रेम के आवेश में भगवान् के तद्रूप हो गया था।

उस अवसर पर उनका सएवाहं कहना और वैसा ही बर्ताव करना अनुचित न था।

और देखिये लोहा रूप और गुण दोनों में अग्नि से विलक्षण है। अग्नि का रूप लाल और गुण दाह करना है। और लोहा श्याम रूप और शीतल होता है। परन्तु जब वो अग्नि में रहने से लाल रंग वाला और दहन शक्ति वाला हो जाता है तो उस समय उस लोहे को अग्नि कहना अनुचित और अन्याय नहीं हो सकता।

इसी पर दृष्टान्त कीट और भृंग का शास्त्र कारों ने दिया है। कि भौंरा कीड़े को पकड़ कर अपने स्थान में ला रखता और भूं भूं शब्द निरन्तर करता है तो कुछ काल में कीड़ा भौंरे का रूप धारण करलेता है। इस कीट भृंग न्याय के अनु-

कार भक्त प्रेम आसक्ति दशा में सप्वाहम् अर्थात् भगवान का रूप ही हो जाता है।

प्रेमा भक्ति से तद्रूपता के उदाहरण संसार में बहुत मिलते हैं। जैसे शीरीं पर फहाद ऐसा आसक्त था कि उसके शरीर से रक्त की धारायें जब बहने लगी तो पर्वत पर उस रक्त से शीरीं शीरीं ही सर्वत्र लेख हो गया।

और लैला पर मजनू ऐसा आसक्त था कि फस्द लैला की खोली गई और खून मजनू के शरीर की नस से जारी हो गया।

(खूं रगे मजनू से टपका फस्द लैला की जो ली)

और सुनिये हनुमान जी जब मुद्रिका लेकर अशोक वाटिका में पहुंचे तो देखा कि श्रीजगन्माता जानकी चुप चाप बैठी हैं। और उनकी विरह में श्रीरघुनन्दन महाराज को विलाप करता छोड़ आये थे। इनके मन में शंका होते ही श्रीजानकी जी ने यह दोहा पढ़ा।

> भो मन मूरत राम की भो मूरत उर राम।
> यहां बिठाई पुरुष की वहां बिलपती बाम॥

अर्थात् मैं राम के ध्यान में उनके रूप और वे मेरे रूप हो गये हैं। धीरज रखना पुरुष का धर्म मुझ में और विलाप करना स्त्री का धर्म उनमें आ गया है। अतः भली भांत सिद्ध हो गया कि प्रेम की पराकाष्ठा में प्रेमी और प्रियतम एक रूप हो जाते हैं। बस इसी दशा में सप्वाहं का प्रयोग उचित है। और इसीलिये प्रेमा भक्ति का परिणाम ये ही कहा गया है जिसका दरजा सब से ऊंचा और उत्कृष्ट मान्य है।

इत्यलम्॥

वसन्त बनि आवैगो

[ले०—श्रीयुत अक्षयसिंह वर्मा अक्षय]

का विवेक वाटिका प्रफुल्लै ह्वै है भाग जागे,
फेरि अनुराग मे पराग प्रगटावैगो।
दावानल दाहे द्रुम बृन्द दीन दासन को,
हृदय हुलास नव पल्लव लहावैगो।
भक्त कल कण्ठन को "अक्षय" विनोद मंढि,
गोकुल प्रमोद पचिछबिस पैचहावैगो।
करिके हिमन्त कलि अन्त अवतार धारि,
कबै कन्त राधा को वसन्त बनि आवैगो॥

---

* दीनोद्धार *

(रचयिता श्री स्वामी लक्ष्मणाचार्य वाणी भूषण)

१

गह्वर वन में एक वृक्ष अति उच्च हरा लहराता था।
उसमें एक विहङ्गम बैठा प्रमुदित पंख फुलाता था॥
वनकी शोभा निरख निरख कर मनही मन हर्षाता था।
सुरभित मन्द पवन से मानो वह प्रमोद अति पाता था॥

२

क्षण में सौख्य दुःख क्षण में ही इस जगमें आजाता है।
ईश न जाने पल पलमें क्या क्या लीला दिखलाता है॥
उस पक्षी को देख वधिक इक उस तरुके नीचे आया।
है शिकार अच्छा ऐसा कहके मन में वह हर्षाया॥

३

उधर बाज भी इक आ खग के सिर परही मंडरा आया।
ऊपर और तले हां! उसके काल अचानक था छाया॥
इन दोनों कालों को औचक देख विहङ्गम अकुलाना।
उड़ते बने न बैठे रहते ऐसा मनमें अनुमाना॥

४

जो उड़कर मैं चलूं कहीं तो अब यह बाज मरोड़ेगा।
जो बैठा ही रहूं यहां तो बधिक शीघ्र तन फोड़ेगा॥
ऐसे अवसर में हे ईश्वर तू मेरा रखवाला है।
पड़ा अचानक इन दुष्टों से आज कठिन प्रभु पाला है॥

५

हे स्वामी तेरी सुसृष्टि मे हम पक्षी कहलाते हैं।
वनके फल खाते हैं तेरे नित्य प्रति गुण गाते हैं॥
अपनी मीठी वाणी से ही सबको सुख उपजाते हैं।
बैठे विटपों में प्रभु तेरे यश की ध्वजा उड़ाते हैं॥

६

ऐसे कुसमय में हे स्वामी तूही मेरा त्राता है।
डार डार में पत्र पत्र में तूही तू दिखलाता है॥
तृण का शैल शैल का तृण तूही हे नाथ बनाता है।
भव सागर से जनका बेड़ा तू ही पार लगाता है॥

७

दीन दयाल कृपाल नाम बस जगमें स्वामी तेरा है।
भक्तों के उरमें सुनता हूं तेरा सदा बसेरा है॥
निज भक्तों के सबष्टों को क्षण में स्वामी टाला है।
उजियाला है तेरा ही तू चक्र सुदर्शन वाला है॥

८

इस प्रकार प्रभु के गुण गा वह पक्षी[आँखें भरलाया।
एक चित्त हो प्रभु में अपने तन को मन को बिसराया॥
उधर पारधी ने कब इसपर तुर्त ताक सर सन्धाना।
सन्सनाय सर लगा बाज के बाज बिकल हो चिल्लाना॥

९

सरसे बिंधा गिरा वह भू में रक्त भरा तन त्यागा है।
विद्युत् गति से बधिक पुनः सर तजने में अनुरागा है॥
एक सर्प इतने में आया और बधिक को काट लिया।
जहर लहर से क्रूर बधिक का फिरतो कांपने लगा हिया॥

१०

तड़प तड़प कर बधिक दुष्टने भी निज प्राणों को छोड़ा।
ईश्वर ने मानो इस पक्षी की यम फांसी को तोड़ा॥
दोनों पातक मरे क्योंकि वे क्रूर कुटिल अति पापी थे।
बिना काज जीवों के वे खल नित्य प्रति सन्तापी थे॥

११

जो जैसा करता है वैसा भरता है यह झूठ नहीं।
जीव सता कर क्या कोई भी रह सकता है सुखी कहीं॥
दीन बन्धु संकट जनों के इस प्रकार से हरते हैं।
धन्य धन्य वे हैं जन जो श्रीहरि का सुमिरण करते हैं॥

प्रयाग पंच क्रोशी की परिक्रमा

[ले०—श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी हंस तीर्थ]

ब्रह्मचारी जी ने यह लेख पौष सं० १९९० में भक्ति में छपने को भेजा था। और उसी मास में छपने के लिये आज्ञा दी थी। आप का विचार १९९० के माघ में पंचकोशी परिक्रमा देने का भी था जो सानन्द-पूर्ण हो गई होगी।

परन्तु भूल से यह लेख भक्ति में उस समय न छप सका, लेख बड़ी खोज और परिश्रम से लिया गया है, वर्तमान काल में जब कि जनता तीर्थों के प्रभाव और महात्म्य से अनभिज्ञ होती जा रही है तब ऐसे लेखों की अत्यन्त आवश्यकता है किसी तीर्थ या व्रत का महात्म्य जान लेने पर उसमें श्रद्धा बढ़ती है और पूर्ण फल मिलता है लेख उपयोगी। और सामयिक है और सदा सामयिक ही रहेगा इस विचार से आशा है कि दो वर्ष पीछे छपने पर ब्रह्मचारी जी क्षमा करेंगे। कल्याण के माघ १९९० के अंक में भी यह लेख छप चुका है। (सम्पादक)

इस घोर कलिकाल में भगवत् प्राप्ति के प्राचीन वैदिक साधन प्रायः लुप्त से हो गये। अब न तो कोई वेदों का ही अध्ययन करता है और न वेदों में कथित यज्ञ यागों का अब प्रचार रहा। ब्राह्मण और क्षत्री नाम धारी रह गये हैं। समय के प्रभाव से सभी कृपा हीन श्री हीन और आचार्य हीन हो गये हैं। कर्म काण्ड की प्रथा लुप्त हो गई घृत, दुग्ध तथा अन्य सामग्रियां शुद्ध नहीं मिलती तीर्थों में दम्भी और पाखंडियों ने अड्डा जमा लिया है। योग साधन के जानने वाले मिलते ही नहीं है। फिर प्राणायाम साधन करने के योग्य हमारा ब्रह्मचर्य नहीं रहा। ऐसी दशा में भगवत् प्राप्ति कैसे हो? क्या इस समय के लिए उन साधनों से प्रथक् कोई सुलभ सरल और सर्वोपयोगी साधन नहीं है? शास्त्रों में कहा है, हां ऐसे भी सुलभ साधन हैं जिन से सांख्य, योग और कर्म काण्ड के बिना भी भगवत् प्राप्ति या मुक्ति हो सकती है। वे मुख्यतया ये तो साधन हैं।

इत्यादि दोष विध्वस्त बुद्धीनां वै कलौ युगे।
तीर्थ यात्रा हरेर्नाम स्मरणं तारकं मतम्॥

इन अनेक दोषों से युक्त घोर कलिकाल में तीर्थ यात्रा और भगवन्नाम संकीर्तन ये ही दो सर्व श्रेष्ठ साधन हैं। श्रद्धा पूर्वक तीर्थ सेवन करो, भक्ति भाव से या जैसे भी बन सके वैसे भगवन् नामों का स्मर्ण कीर्तन और श्रवण करो। तुम संसार सागर से पार हो जावोगे। तुम्हें वही गति प्राप्त हो जायगी जो हजारों वर्ष निराहार तप से अथवा राजसूय अश्वमेध आदि यज्ञों से प्राप्ति होती थी। यही क्यों! उनका फल तो कभी न कभी नाश भी हो जाने वाला है? किन्तु भगवन् नाम कीर्तन और तीर्थों का फल तो अक्षय है। इसलिए सब प्रकार से तीर्थ सेवा और भगवन् नाम जप करना चाहिए।

तीर्थों की सांगता।

शास्त्रकारों ने तीर्थ यात्रा के पांच अंग बताए हैं। स्नान, दान, ब्रह्म भोज, उपवास और

परिक्रमा। इनके अतिरिक्त किन्हीं किन्हीं क्षेत्रों में किसी किसी क्रिया का विशेष महात्म्य है जैसे गया जी में श्राद्ध, प्रयाग में मुण्डन, जगन्नाथ जी में चावल का प्रसाद आदि २। दान का वैसे तो कलियुग में सब ही जगह महात्म्य है। दान के सहारे ही कलियुग में धर्म टिका हुआ है। किन्तु तीर्थ क्षेत्रों में इसका महात्म्य विशेष है इसी प्रकार स्नान ब्रह्म भोज और परिक्रमा का भी महात्म्य अन्य स्थानों की अपेक्षा तीर्थ में विशेष है। धर्म में श्रद्धा रखने वाले हिन्दु अब भी यथा शक्ति तीर्थों में जाकर इन कार्यों को करते हैं।

तीर्थों के राजा प्रयाग राज।

जो जड़ वाद के उपासक हैं और इन पंच भूतों के पदार्थों को ही सत्य मानते तथा चर्म चक्षुओं से देखी जाने वाली चीजों को ही प्रमाण मानते हैं, वे शास्त्रों के आधिदैविक और आध्यात्मिक बातों को क्यों मानने लगे उनके लिए जैसी ही प्रयाग की भूमि वैसी ही अन्य स्थानों की। जैसा जान्हवी जल वैसी ही अन्य जल। उन भाइयों से हमें कुछ कहना भी नहीं है, किन्तु जो धर्म में विश्वास रखते हैं शास्त्र वाक्यों को प्रमाण मानते हैं उनसे हमें कहना है कि तीर्थ कोई निर्जीव या काल्पनिक वस्तु नहीं है वे सजीव है स शरीर है और पापों को नाश करने की उनमें शक्ति है। पुराणों में जहां २ भी ब्रह्मा जी की सभा का वर्णन आया है वहां अयोध्या मथुरा आदि पुण्य प्रद पुरियों गंगा यमुना आदि परम पवित्र नदियों और प्रयोग कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों का वहां स शरीर उपस्थित होना बताया गया है। ये सभी सदा लोक पितामह ब्रह्मा जी की उपासना करते हैं। शास्त्रकारों की ऐसी मान्यता है। कि यह चराचर विश्व एक नियमित शासन के आधार चल रहा है। सभी जाति के प्राणियों में एक सामर्थवान पुरुष होते हैं, उन्हें इस जाति का राजा कहते हैं, कीट पतंग से लेकर देवताओं तक के राजा होते हैं। देवताओं के राजा तो इन्द्र प्रसिद्ध ही हैं, इसी प्रकार संपूर्ण तीर्थों के राजा प्रयाग राज हैं। अयोध्या, मथुरा, माया काशी, कांचि, अवन्तिका ये सात पवित्र पुरियां इन प्रयाग राज की पट रानियां हैं। इनमें काशी सबसे बड़ी पटरानी बताई गई है। इसी आशय का पद्म पुराण में यह श्लोक है:—

पुर्यः सप्त प्रसिद्धाः प्रतिवचनकरी तीर्थराजस्य भार्या।
नैकट्यान्मुक्तिदाने प्रभवति सुगुणा काश्यते ब्रह्म यस्याम्॥
सेयं राज्ञी प्रधाना प्रियवचनकरी मुक्ति दानेन युक्ता।
येन ब्रह्माण्डमध्ये स जयति सुतरां तीर्थराजः प्रयागः॥

प्रयाग को प्रजापति क्षेत्र कहते हैं। ब्रह्मा जी ने यहीं तप किया था और अनेकों यज्ञ किये थे इसी कारण इसका नाम प्रयाग पड़ा। यहां गंगा यमुना और सरस्वती का संगम है। शास्त्र कारों ने इसे पृथवी की जंघा माना है। महाप्रलय में भी नाश न होने वाला अक्षयवट यही है। महाप्रलय में बाल मुकुन्द भगवान इसी वट वृक्ष के पत्तों पर पैरके अंगूठों को मुंह में देकर क्रीड़ा करते रहते हैं। प्रयाग प्रतिष्ठानपुर (झूसी) और अलर्कपुर (अरैल) को मार्कण्डे जी ने मत्स्यपुराण में गार्हस्पत्याग्नि, आहवनीय और दक्षिणाग्नि माना है। सभीतीर्थ इस क्षेत्र में आकर निवास करते हैं। आठों लोक पाल सातों ऋषि, साध्य, यक्ष, गन्धर्व, अप्सरायें, देवर्षि, महर्षि, तथा समस्त ऋषि महर्षि तीर्थराज प्रयाग की आराधना करते हैं। साढ़ करोड़ से भी अधिक

तीर्थों का निवास प्रयागराज की सन्निधी में बताया जाता है। यहां पापों के प्रायश्चित्त स्वरूप या स्वर्ग प्राप्ति के लिए प्राण त्यागने की प्रथा प्राचीन थी। हठ से भी प्राण त्यागने का पाप यहां नहीं लगता था। हैहै वंशी महाराज गांगेय देवने कुमारिल भट्ट जैसे वैदिक धर्म प्रवर्तक ऋषि ने निवृत्त नाथ, ज्ञानदेव जैसे अवतारी पुरुषों के माता पिताओं ने तथा असंख्यों धर्मभीरु पुरुषों ने हंसते २ वटमूल में अपने प्यारे प्राणों को लोक पावनी त्रिवेणी के पावन प्रवाह में प्रवाहित करदिया। यह अविनाशी क्षेत्र है। तीर्थों का शिरोमणि है, तीर्थों का भी तीर्थ है, पवित्रों को भी पवित्र करने वाला है और बिना सांख्य योग और यज्ञ यागों के मुक्ति देने वाला है। आज भी प्रति वर्ष महीने डेढ़ को मकर का मेला यहां प्रति वर्ष होता है। धर्म भीरु हजारों आस्तिक हिन्दु घोर शीतकाल के समय में गंगा यमुना की वर्फ के समान शीतल बालू में फूस की कुटिया बनाकर मकरभर एक मास कल्पवास करते हैं और यथाशक्ति दान पुण्य ब्रह्म भोजन, स्नान उपवासादि भी करते हैं। किन्तु प्रयाग की पंच कोशी की प्रथा प्रायः लुप्त सी ही होगई है। इस कारण बहुत से तीर्थ भी लुप्त होगये हैं। जैसे नैमिशारण्य, काशी की पंच कोशी चित्रकूट की परीक्रमा, बृज चौरासी कोशकी परिक्रमा होती है उसी प्रकार पहिले यहां की भी परिक्रमा होती रही होगी। किन्तु अबतो यह प्रथा बहुत काल से लुप्त होगई है। यह हम आस्तिक हिन्दुओं के लिए बड़ी ही लज्जा और दुःख की बात है। सभी तीर्थों के एक मात्र वन्दनीय और पूजनीय राजा की परिक्रमा प्रथा लुप्त होजाय इससे बढ़कर दुःख और संताप की क्या बात हो सकती है। मैं बहुत दिनों से पुराणों का स्वाध्याय बड़े मनो योग से कर रहा हूं। जहां २ पुराणों में तीर्थों का प्रसंग आया है वहां २ तीर्थराज प्रयाग की सबसे अधिक प्रशंसा की गई है। प्रायः सभी पुराणों में प्रयाग की सर्वश्रेष्ठता का वर्णन है इधर प्रयाग महात्म्य लिखने के लिए प्रेमविद्यालय के संचालकों से मेरा ध्यान इस ओर आकर्षित किया। इसी के लिए मुझे बहुत से प्रयाग महात्म्य पढ़ने पड़े। तभी प्रयाग पंचकोशी के पथके अन्वेषण की जिज्ञासा हुई। जहां २ पता चला वहां २ जाकर, साधु महात्माओं से पूछ कर, शताध्यायी तथा अन्य महात्म्यों को मिलाकर मैंने पंचकोशी का पथ तैयार किया है अब आगे उसी के सम्बन्ध में लिखाजाता है।

पंच कोशी की परिकमा।

हम पहिले ही बता चुके हैं, कि परिक्रमा की प्रथा सनातन है। जिस क्षेत्र की जितनी सीमा मानी जाती है उसके चारों ओर घूमने का नाम प्रदक्षिणा है। ब्रज मंडल को चौरासी कोस का बताते हैं। उसकी चौरासी कोसकी परिक्रमा है। इसी प्रकार काशी, कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य, अयोध्या चित्रकूट सभी तीर्थों की सीमा है और उनकी उतनी ही बड़ी छोटी परिक्रमा होती है। प्रयाग का नाम प्रजापति क्षेत्र है, इसकी सीमा युगों के अनुसार घटती बढ़ती रहती है। सतयुग में चारों धाम इसकी सीमा थे। इसी प्रकार त्रेताद्वापर में अयोध्या, चित्र-कूट, जाजम ये सभी इस क्षेत्र की सीमा में ही माने जाते थे। अब कलियुग में अक्षवट से चारों ओर १०-१० कोस ५-५ कोस या २॥-२॥ कोस इस क्षेत्र की सीमा है। प्रयाग की एक सवा महिने की परिक्रमा बताई जाती है और उसे ८४ कोस की कहते हैं। एक और सीमा के सम्बन्ध में श्लोक।

मिलता है।

दुर्वासा पूर्वभागे निवसति वरुणी खंडनाथः प्रतीच्याम्
पर्णाशो याम्य भागे धनददिशि तथा मंडलेशश्च मुनीशः ॥
पंचक्रोशं त्रिवेण्याः परित इह सदा सन्ति सीमान्त भागे।
सुक्षेत्र योजनानां दशमिति मभितो भुक्ति मुक्ति प्रदं तत् ॥

अर्थात् पूर्व भाग में ५ कोस पर दुर्वासा मुनि (ककरा कोटवा के पास, रहते हैं। पश्चिम पांच कोस वरुणगड़ी शिव निवास करते हैं। दक्षिण पांच कोस पर्णास मुनि (पनासा के पास) रहते हैं और वट वृक्ष से पांच कोस उत्तर मण्डलेश्वर नाथ (पशिला महादेव) निवास करते है। यही पंच क्रोशी की सीमा है। यह श्लोक किसी पुराण का होगा। हमें तो कहीं मिला नहीं इससे यही सिद्ध होता है कि प्रयाग की विस्तृत (बहिर्वेदि) मध्यम (मध्यवेदी) और संक्षिप्त (अंतरवेदी) तीन प्रकार की परिक्रमा रही होगी, यहां पर हम प्रजापति क्षेत्र की पंच क्रोशी परिक्रमा पर ही विचार करना चाहते हैं जिसकी सीमा पुराणों में स्पष्ट बांधी गई है। जहांतक प्रसिद्ध तीर्थ गिनाए हैं वही असली पंचकोशी की सीमा और परिक्रमा मानी जा सकती है। अब इसी बात पर विचार किया जायगा।

पंच कोशी परिक्रमा की सीमा के साधन।

परिक्रमा आदि धार्मिक रूढ़ियों का सर्वोत्कृष्ट साधन तो परम्परा से चली आई प्रचलित रूढ़ि ही है। बहुत सम्भव है कभी २ रूढ़ियों का विकृत रूप होकर कुछ बन जाता है किन्तु बुद्धिमान पुरुष शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर उसकी यथार्थता सहज में ही समझ लेते हैं दुःख है कि आजकल प्राचीन रूढ़ियों को मिटादेने की प्रवृत्ती लोगों में उठरही है। कुछ भी हो धर्म प्राण हिन्दु जाति किसी न किसी रूप में अपनी परम्परा को अब भी थोड़ी बहुत बनाये ही हुए है। कुम्भ आदि पुण्य पर्वों पर सभी संप्रदायों के करोड़ों पुरुष माता जान्हवी के झंडे के नीचे इकट्ठे हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्य तीर्थों की भी मर्यादा किसी न किसी अंश में विद्यमान है, किन्तु प्रयाग पंचकोशी की प्रथा लुप्त प्राय होगई है। अतः लोगों को पंच क्रोशी का नाम तो याद है और अबभी मुख्य २ स्थानों के दर्शन करके लोग कहते हैं कि हमने पंच क्रोशी करली। किन्तु यथार्थ में परिक्रमा अब कोई नहीं देते। हां ! कार्तिक में अक्षय नवमी को एकदिन की परिक्रमा अबभी कुछ लोग देते हैं। मैंने लोगों से पंच क्रोशी परिक्रमा का पथ बहुत पूछा, किन्तु ठीक २ किसी ने नहीं बताया। सभी ने अपना अनुमान दौड़ाकर हमें रास्ता बता दिया। अतः परिपाटी लुप्त सी हो जाने के कारण परम्परागत परिक्रमा पथ तो रहा नहीं। एक बात और ध्यान में रखने की है। कि प्रयाग पंच कोसी की परिक्रमा अन्य तीर्थों की परिक्रमा से भिन्न है, इसमें गंगा, यमुना और मिश्रित संगम इस प्रकार तीनों के छः तट हैं इन छेउंके किनारे तीर्थ हैं। परिकमा में ये तट छूटने न पावें और कहीं नदी को पार करके व्यान्तर भी न हो। अतः परिकमा के सम्बन्ध में इतनी बातें आवश्यक हैं।

(१) आज तक पुराने संत माहात्मा जिस प्रकार परिक्रमा करते रहे हों वही पृथावर्त्ता जाय।

(२) तीनों अग्नि स्वरूप प्रतिष्टानपुर (झूसी) अलर्कपुर (अरैल) और प्रयाग की परिक्रमा हो जाय।

(३) छः तटों के कोई भी प्रधान तीर्थ न छूटने पावें।

(४) प्रयाग के अष्ट नायक त्रिवेणी, माधो,

सोम, भारद्वाज, वासुकी, अक्षयवट, शेष और प्रयाग ये परिक्रमा में आजांय।

(५) पुराणों में जो प्रजापति क्षेत्र की सीमा बांधी गई है वहां से आगे न जाया जाय।

(६) जिस दिशा में जहां जाकर तीर्थों के कथन का अन्त कर दिया हो उसे ही निश्चित सीमा मानी जाय।

(७) वेणी माधव (संगम) को छोड़कर कहीं भी नदी को पार न किया जाय।

(८) परिक्रमा सीधी दक्षिणावर्त होजाय।

इन आठों बातों का जिसमें पालन होजाय वही यथार्थ निश्चित और प्रमाणिक पंच क्रोशी का पथ निश्चित कर दिया जाय। इसी बात पर अब विचार करना है। पहिले पुराणों से यह निश्चय करना है कि उन्होंने प्रजापति क्षेत्र की सीमा कहां तक बताई गई है। मत्स्य पुराण में लिखा है--

आ प्रयाग प्रतिष्ठानात् पुरो वै वासुके ह्रदात्।
कम्बलाश्वतरौनागौ नागश्च बहु मूलकः॥
एतत् प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
अत्र स्नाता दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥

अर्थात् प्रयाग प्रतिष्ठान (झूसी) से लेकर वासु के तालाब से आगे तक और कम्बल अश्वत्तर नाथ तथा नाग (तीर्थ) और बहुमूलक इनके बीच में जो भूमि है वही प्रजापति क्षेत्र है और तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। इस बीच में जो स्नान करते हैं वे स्वर्ग को जाते हैं और जो मर जाते हैं वे फिर जन्म धारण नहीं करते। ये ही श्लोक प्रयाग महात्म्य शताध्यायी में यों लिखे हैं—

आप्रयाग प्रतिष्ठानं धत् पुरो वासुके ह्रदात्।
कम्बलाश्वतरौ नागौ नागश्चव हुमूलकः॥
एतत् प्रजापते क्षेत्रं त्रिष लोकेषु विश्रुतम्।
यत्र स्थिता न तप्यन्ते प्रनाभूय दुर्गात्मना॥

दोनों का भाव एक ही है। बहुत से लोग नाग अलग नमानकर बहु मूलकनाग ऐसा अर्थ करते हैं। एक प्रयाग पंच कोशी की सं०१९४३ की छपी ८४ कोश की परिक्रमा में लवाइन गांव में बहुमूलक नाग के स्थान का उल्लेख है सो एक दम अशुद्ध है। पता नहीं उस पुस्तक में किस ग्रन्थ के आधार पर अनेक गांवों में तीर्थों के नाम गिनाए गये हैं और उनका परिमाण भी धनुष और कोसों में लिखा है। उसकी एक भी बात शताध्यायी से ठीक २ नहीं मिलती। अतः उसे तो हम एक दम प्रमाणिक समझते। असल में इस श्लोक ने "च" करके नाग को अलग कर दिया है। हमारी इस बात की पुष्टि इस बात से भी होती है। शताध्यायी में गंगा के उत्तर तक तीर्थों में सबसे अन्त में नागतीर्थ का ही वर्णन किया है। जैसा कि इस श्लोक में है।

तस्यैवाग्नेय दिग्भागे प्रतिवेण्या उदक्तटे।
वर्तते नागतीर्थं हि नागनागो गणायुतम्॥

अर्थात् व्यासाश्रम (अकेला पाठशाला) से अग्निकोण में त्रिवेणी के उस पार उत्तर तट पर नाग नामक तीर्थ है वहा नागों के भी नाग अपने गणों के साथ रहते हैं। वहां अब भी नागेश्वरनाथ जी का प्रसिद्ध मंदिर है। फिर इसके बाद शेषजी ने दक्षिण में वहिर्वेदी किसी भी तीर्थ का वर्णन नहीं किया है। उससे आगे कह दिया है—

तस्यास्य तीर्थं राजस्य महापुण्या भवत् कृते।
वेदीनांत्रितयं प्रोक्तं किमन्यत् श्रोतु मिच्छथः॥

अर्थात् आप लोगों के पूछने पर मैंने अन्तर वेदी, मध्यवेदी और वहिर्वेदी के तीर्थों का वर्णन किया अब आप लोग और क्या पूछना चाहते हैं। इस बात से स्पष्ट सिद्ध होता है कि नाग तीर्थ

दक्षिण दिशा की सीमा है और इस श्लोक में प्रजापति क्षेत्र अथवा त्रिवेणी क्षेत्र की सीमा ही बताई जा रही है, इसको नाग कहने से उनका मतलब नागतीर्थ या नागेश्वर नाथ से ही है।

अब फिर सोचना है कि तब बहुमूलक का क्या अर्थ है बहुमूलक किस दिशा की सीमा पर है । बहुमूलक शब्द को माना है। बहुत मूल्यवाला। नामकोश में वट वृक्ष को भी बहुमूलक कहा है किन्तु यहां तो प्रजापति क्षेत्र की अवधि बता रहे हैं, अतः बहुमूलक कोई वट के अतिरिक्त दूसरा ही तीर्थ होना चाहिए जो सीमा के सम्बन्ध में ठीक बैठे। लवाइन में बहु मूलक नाग का स्थान हो नहीं सकता क्योंकि वह ठीक दक्षिण में है और शताध्यायी में स्पष्ट लिखा है--

ततो धनदादि भूभागे विदूरे बहुमूलकः।
नागस्तु वर्तते तीर्थो वधि स्तम्भ धरः परः॥

अर्थात् कुबेर की उत्तर दिशा में थोड़ी दूर पर बहुमूलक नाम का नाग है वही तीर्थ की अवधि का स्तम्भ रूप हो उत्तर दिशा में हो और वासुकी हदके आगे हो वही बहुमूलक नाग है। भोगवती से आगे उत्तर में तो शेषनागजी का स्थान है और सहस्र फण होने के कारण उनका नाम बहुमूलक भी है अतः उत्तर दिशा के वे ही स्तम्भ हैं। क्यों के शताध्यायी में और मत्स्य पुराण की द्वादशाध्यायी में भी शेष नाग के स्थान से आगे कोटि तीर्थ (शिव कोटि) का वर्णन है । अतः शिवकोटि तक हमें बहु मूलक स्थान की सीमा समझनी चाहिए । क्योंकि मार्कण्डेजी प्रजापति के क्षेत्र के तीर्थों का ही वर्णन करते हैं और वहां स्पष्ट कहते हैं--

कोटितीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान् परि त्यजेत्।
कोटिवर्षं सहस्राणि स्वर्गं लोके महीयते॥

अर्थात् कोटि तीर्थ में जाकर जो प्राणों को छोड़ देता है, वह करोड़ों वर्ष स्वर्ग में जाकर सुख भोगता है। शताध्यायी में भी बहुमूलक नाग के पूर्व गालव चाभर और भार्गव आश्रमों का वर्णन करने के अनन्तर कहा है--

कोटितीर्थन्तु तत् पूर्वे गंगाया दक्षिणे तटे।
वर्तते परमं स्थानं कोटितीर्थं फल प्रदम्॥

अर्थात् इन उत्तर के आश्रमों के पूर्व तरफ गंगाजी के दक्षिण तट पर कोटि तीर्थ के फलों के देने वाला कोटि तीर्थ है। इन सभी बातों से भोगवती से आगे शिव कोटि तक इधर की सीमा सिद्ध होती है। पश्चिम में कम्बलाश्वतर के सामने (महेवा) के पास हिन्दी विद्यापीठ) और अग्नि कोण में गंगा के उत्तर तट में नाग तीर्थ सीमा हुई। क्योंकि गंगाजी के पास इस पर मानस तीर्थ (मन्सूइता नदी के संगम सनौटी के पास) तक ही तीर्थों का वर्णन है अतः इधर की सीमा मानस तीर्थ स्वतः ही सिद्ध है। इस प्रकार प्रजापति क्षेत्र या वेणी क्षेत्र सीमा का एक त्रिभुज बन गया। चौथा कोण द्रौपदी घाट आपसे आप बन जाता है। इधर नागतीर्थ से (झूतनगर) सीधा मानस तीर्थ (सलोरी) तक। उधर कोटि तीर्थ (शिवकोटि) से सिन्ध सागर तीर्थ के सामने (हिन्दी विद्यापीठ) तक। उधर कम्बलाश्वतरनाथ (सैनी) से लेकर नागेश्वर तक। बस, यही प्रजापति क्षेत्र है। इस के बीच में जो भूमि है उसी को वेणीक्षेत्र कहते हैं। इसको लम्बाई शताध्यायी में पांच कोश की बताई है--

पंचकोशात्मकक्षेत्रेषटकोणं विश्वतो न्नतम्।
प्रकृष्टं सर्व यागेभ्य स्तुलायामधि रोहतु॥

अर्थात् जब देवता अन्य सभी तीर्थों को तुलापर रख कर तोल चुके तब शेष जी ने कहा "पांच कोश वाले विश्वतोन्नत इस कोण युक्त प्रयाग क्षेत्र को भी तराजू पर रखिए सम्पूर्ण यज्ञों से अति श्रेष्ठ हैं। हम समझते हैं हिन्दी विद्यापीठ से नागेश्वर नाथ ५ कोस अवश्य होंगे। और नागेश्वर नाथ से मंसइता के मुहाने (सनोटी के आगे तो पांच कोस होने में कोई संदेह ही नहीं वहां से करहा घाट ६ कोस हो तो कोई संदेह की बात नहीं। प्रयाग, अरैल और झूसी इन तीनों को ही प्रजा पति क्षेत्र या वेणी क्षेत्र कहा है। शताध्यायी में इन्हे क्रमशः अन्तर्वेदी, मध्यवेदी और बहिर्वेदी माना है। मत्स्य पुराण में गार्हपत्याग्नि आह्वनीय और दक्षिणाग्नि कहा है। इन तीनों का क्षेत्रफल २० कोस माना है जैसा कि शताध्यायी में लिखा है।

पंचयोजन विस्तीर्णं प्रयागस्यतु मंडलम्।
प्रविष्टस्यैव तद् भूमावश्वमेध पदे पदे॥

"यह प्रयाग मण्डल पांच योजन (२० कोस) में फैला हुआ है इसकी भूमि में प्रवेश करने पर पद पद पर अश्वमेध यज्ञ का फल होता है।" गंगा यमुना और मिश्रित धारा के ६ तट होने के कारण इन तीनों वेदियों की त्रिकोण परिक्रमा होगी और इसी क्रम से शताध्यायी में बताया गया है। परिक्रमा करने पर २० कोस से अधिक पड़ेगी भी नहीं।

इन सब प्रमाणों से नागेश्वर नाथ, मानस तीर्थ, कम्बलाश्वतरनाग और शिव कोटि यही प्रजापति की सीमा सिद्ध हुई। अब परिक्रमा इस ढंग से बनानी चाहिए कि पुराणों में बताए सीमा का भी उल्लंघन न हो छैऊं तटों के प्रसिद्ध तीर्थों की परिक्रमा भी होजाय। और साथ ही प्रयाग, अरैल और झूसी इनकी भी प्रदक्षिणा होजाय। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए हमने परिक्रमा का पथ यह तैयार किया।

परिक्रमा का पथ।

पहिले दिनमें त्रिवेणी में स्नान करके तंदुल पुष्प से संयुक्त जलसे तर्पण आदि करके तीनों वेणियों का पूजन अर्चन कर के यथाशक्ति दक्षिणा देकर अक्षयवट में जाना चाहिए वहां अक्षयवट का तथा उनकी सन्निधि में वास करने वाले देवता ऋषियों का पूजन करके यमुना किनारे घृत कुल्या, मधुकुल्या, निरंजन तीर्थ, आदित्यतीर्थ, ऋण मोचन तीर्थ, पाप मोचन तीर्थ, रामतीर्थ, सरस्वती कुण्ड, गौघट्टन तीर्थ, कामेश्वर तीर्थ (मन कामेश्वर नाथ) के दर्शन करते हुए गौ घाट होते हुए बरुआ घाट से तक्षकेश्वर शिवजी के मंदिर में जाना चाहिए। वहां से तक्षक कुण्ड, कालीयह्रदचक्र तीर्थ आदि में मार्जन प्रणाम करते हुए सिन्धु सागर तीर्थ पर पहुंचना चाहिए। वहां से अतरसुआ अत्रिअनुसूया को सीधी सड़क गई है उससे ललिता देवी के दर्शन करके (अटाल के पूर्व) पाण्डव कूप की प्रदक्षिणा करते हुए (गढ़ही की सराय मुहल्ले में) वरुण कूप के दर्शन करते हुए उधर से सूर्य कुण्ड पर पहुंचना चाहिए। वहां प्रणाम करके द्रोपदीघाट होकर भरद्वाज मुनि के आश्रम पर कहीं ठहर जाना चाहिए। दूसरे दिन प्रातःकृत्य करके कुछ दूर उत्तर की ओर जाकर द्रोपदी घाट होते हुए शिव कोटि में दर्शन स्नान मार्जन करते हुए (शेषजी बलदेव जी) नागवसुकी, भोगवती होते हुए दशाश्वमेध घाट पर आना चाहिए। वहां

शिवजी के दर्शन करके दरागंज में वेणी माधव जी की प्रदक्षिणा और दर्शन करके यदि दिन रहे तो गंगाजी के किनारे २ लक्ष्मी तीर्थ, उर्वशीतीर्थ सोमदत्त, दुर्वासा आदि तीर्थों में आचमन, मार्जन नमस्कार करके अक्षयवट के नीचे अन्तर्वेदी की यात्रा समाप्त करनी चाहिए। यदि पहुंच जांय तो रात्रि भर संगमक्षेत्र में रहजाय नहीं तो दारागंज में रात्रि वास करें।

तीसरे दिन त्रिवेणी स्नान पूजन संकल्प करके अरैल में आदि वेणी माधव या विष्णु माधव के दर्शन करके किनारे २ हनुमान कुण्ड, सीता कुण्ड, वरुणातीर्थ, यमतीर्थ, चक्रमाधव, वीरतीर्थ सोमतीर्थ (सोमेश्वरनाथ) सूर्यतीर्थ, वायुतीर्थ और अग्नितीर्थ को नमस्कार करते हुए सीधे देवरखमें जाना चाहिए (अधिक देवों से रक्षित होने के कारण इस क्षेत्रको देव रक्षित क्षेत्र कहने लोगे। उसी का अपभ्रंश देवरख हुआ। यहां शुद्धाद्वैत के प्रवर्तक भगवान वल्लभाचार्य्य जी रहते थे। उनके सबसे बड़े पुत्र श्री गोपीलाल जी महाराज का जन्म यहीं हुआ था तथा उनके द्वितीय पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी के सात पुत्रों में से ६ का प्राकट्य इसी स्थान पर हुआ था। यहीं पर आचार्य देवने श्री चैतन्यदेव महा प्रभु को लाकर उनका सत्कार किया। गौणीय संप्रदाय के महानुभावों के श्री चैतन्यदेव की स्मृति में यहां अवश्य कुछ बनाना चाहिए। वल्लभव कुल संप्रदायों के वैष्णवों का यह पूजनीय तीर्थ है) इसकी प्रदक्षिणा करके नैनी के लिए जो नन्हन तालाब होकर सीधी सड़क जाती है उसी से नैनी स्टेशन पहुंचना चाहिए। वहां से रेल के इसी पाट २ झूंसी स्टेशन के उस पार दादरी गांव में कम्बलाश्वतर (सैनी देवी के चबूतरा) की प्रदक्षिणा करके झूंसी गांव में होकर फिर नैनी स्टेशन आ जाना चाहिए। वहां से सीधे जमुना जी के किनारे सीधे महेवा गांव के पास हिन्दी विद्यापीठ के कहीं आस पास ठहर जाना चाहिए।

चौथे दिन यमुना जी के किनारे २ समस्त तीर्थों को प्रणाम करते हुए शूल टंकेश्वर के समीप अरैल में आजाना चाहिए। शूल टंकेश्वर का पूजन करके त्रिवेणी स्नान करके मध्यवेदी की यात्रा समाप्त करनी चाहिए। और इसपार झूसी में आकर रात्रि वास करना चाहिए।

पांचवे दिन त्रिवेणी स्नान करके समुद्र कूप, ऐल तीर्थ "ऐलेश्वर नाथ" नलतीर्थ संधावट हेस प्रपत्तन, ब्रह्म कुण्ड, शालमली तीर्थ, अरुन्धतीतीर्थ आदि तीर्थों में आचमन मार्जन करते हुए बदरा सनौटी के पास मन्सइता नदी के मुहाने तक जाना चाहिए। वहां मनस तीर्थ को प्रणाम करके सीधे नागेश्वर नाथ छतनगा पहुंचना चाहिए। वहा एक रात्रि निवास करे।

छटे दिन गंगा जी के किनारे २ संख माधव व्यासाश्रम आदि में होते हुए त्रिवेणी स्नान करके यात्रा समाप्त करनी चाहिए। फिर यथाशक्ति दान पुण्य, ब्राह्मण भोजन आदि करे। इस प्रकार तीनों वेदियों की यात्रा समाप्त करे।

यह नियम नहीं है कि इन्हीं स्थानों में ठहरे या पांच ही दिन में पूरी करे या अमुक ही मास या पक्ष में परिक्रमा करे। जहां चाहे ठहर सकता है। जितने दिनमें चाहे परिक्रमा कर सकता है, जिस मास अथवा पक्षमें चाहे कर सकता है किन्तु संक्रान्ति ५-६ दिन पूर्व करके माघ स्नान या कल्पवास करे तो बहुत अधिक फल है। आगे अपनी

जब सुविधा हो तब करे।

इस प्रकार परिक्रमा करने से [१] झूसी, अरैल और प्रयाग तीनों वेदियों की परिक्रमा हो जायगी और रात्रिवास भी हो जायगा। [२] छः तटों के कोई प्रधान तीर्थ न छूटने पावेंगे। [३] प्रयाग के त्रिवेणी माधव आदि अष्ट नायक इसके अन्तरगत आ जायेंगे। [४] पुराणों की परिधि का उल्लंघन भी न होगा। [५] माधव जी को छोड़कर कहीं भी नदी पार न करनी होगी [६] परिक्रमा भी उलटी न पड़ेगी। सब दिन त्रिवेणी स्नान होजायग। मैं समझता हूं यह परिक्रमा शास्त्र सम्मत है और सरल है सबके करने योग्य है। इसका प्रचार और प्रसार होना चाहिए।

परिक्रमा के नियम।

१. त्रिवेणी तट पर श्राद्ध और परिक्रमा का संकल्प लेकर प्रदक्षिणा आरम्भ करनी चाहिए।

२. जहां तक हो नंगे पांव और हो सके तो नंगेसिर परिक्रमा करनी चाहिए।

३. ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए।

४. सत्य भाषण करना चाहिए।

५. भगवन्नामों का मन मन में या जोर जोर से कीर्तन करते रहना चाहिए।

६. अपने बायें हाथ की ओर जहां तक हो मल मूत्र का त्यांग करना चाहिए।

७. एक समय भोजन करना चाहिए, बीच में आवश्यकता हो तो फल दूध ले सकते हैं।

८. तीर्थ में और उनके कलों में श्रद्धा रखनी चाहिए।

प्रयाग पंच क्रोशी परिक्रमा का फल।

सभी शास्त्र और पुराणों में तीर्थ राज प्रयाग को सर्व श्रेष्ठ बताया गया है। संसार के समस्त तीर्थ यहीं आकर निवास करते हैं, अतः प्रयाग परिक्रमा से समस्त तीर्थों की परिक्रमा का फल मिलजाता है। महाभारत में लिखा है, 'जिसने प्रयाग में तीर्थ सेवन कर लिया उसे अन्य तीर्थों में जाने की जरूरत नहीं' यही नहीं किन्तु प्रयाग क्षेत्र में मनुष्य तीर्थ की नियत से जितने पग चलता है उतने ही अश्वमेध यज्ञों का फल उसके लिए मत्स्य पुराण में मार्कण्डेय जी ने बताया है।

प्रसिद्धं श्रुति मूलंतु त्रिगुणाद्यहरं परम्।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलंदत्तं स्मृतं बुधैः॥

यह प्रयाग क्षेत्र वेद मूल परम प्रसिद्ध और तीनों गुणों के द्वारा नाश नहीं होने वाला है। विद्वानों ने इस क्षेत्र में पग पग पर अश्वमेध का फल बताया है 'तीर्थराज की महिमा ही अनन्त है, शेषजी भी इसके महात्म्य को नहीं कह सके तो फिर और कह ही कौन सकता है। शताध्यायी में शेषजी सनकादि ऋषियों से कहते हैं।

एवं च कुरुते यात्रा मन्तर्वेद्या यथाविधि।
अगण्यं पुण्य माप्नोति माधवश्च प्रसीदति॥

इस प्रकार जो अन्तर्वेदी की भी परिक्रमा करता है। उसे अनन्त फल मिलता है और उसके ऊपर माधव की प्रसन्नता होने पर फिर दुर्लभ ही क्या है। जो भक्ति भाव से श्रद्धा पूर्वक प्रदक्षिणा करते हैं उन्हें मनो वांछित फल मिलते हैं। धनकी इच्छा से करने वाले को माधव धनदेंगे, पुत्रकी इच्छा से करने वाले को सत् पुत्र देंगे, यश की इच्छा करने वाले को सौभाग्य वती स्त्री करेगी तो उसे सुख और सौभाग्य प्राप्त होगा। और जो कामना रहित होकर करेंगे उन्हें माधव अपने चरणों की भक्ति अथवा मुक्ति प्रदान करेंगे। सभी को यह परिक्रमा अवश्य पूरी करनी चाहिए यदि

पूरी न कर सकें तो अन्तर्वेदी की तो करनी ही चाहिए। अन्य स्थानों में तो किए हुए पाप तीर्थों में आकर छूट जाते हैं किन्तु तीर्थों में किए हुए पाप वज्र लेप होकर लिपट जाते हैं फिर वे छुटाने पर भी नहीं छूटते। अतः प्रयाग वासियों को छोटे मोटे पापों के प्रायश्चित्त स्वरूप साल में एक बार तो प्रदक्षिणा अवश्य करनी चाहिए यह नियम गृहस्थियों के लिए विशेष है। वीत राग महात्माओं के लिए शताध्यायी में लिखा है "वे तो स्वयं ही तीर्थ स्वरूप हैं फिर भी लोक कल्याण के लिए वे करते हैं।

प्रयाग प्रदक्षिणा का फल अनन्त है शेष तथा ब्रह्माजी भी इसके महात्म्य के फलों का वर्णन नहीं कर सकते। अतः प्रदक्षिणा महात्म्य के बहुत से श्लोकों में से नीचे केवल ६ श्लोकों को अर्थ सहित देकर इस महात्म्य को समाप्त करते हैं।

प्रयाग यात्रा पुण्यानि वक्तु शक्नोतिकः पुमान्।
दिव्यवर्षं शतेनापि माइरोन किमन्यतः ॥१॥
सकृत् कृत्वा विधानेन तीर्थं राज प्रदक्षिणम्।
स विनिर्भिद्य ब्रह्माण्डं याति ब्रह्म सनातनम् ॥२॥
प्रदक्षिणा त्रयं कुर्यात् प्रयागस्य तु योनरः।
भूत भव्य भविष्येषु न स शोच्यः कदाचनः ॥३॥
प्रयागे यत् कृतं पापं सूक्ष्मं तदपि दारुणम्।
वज्रलेपं तदाख्यातं तदप्यत्र विमुच्यते ॥४॥
पूर्वं जन्मार्जितैः पापैरन्यतीर्थं कृतैरपि।
प्रयाग करणान्मुच्येत् तैः प्रयाग वहिष्कृतैः ॥५॥
पापं लोका ये प्रयागे प्रकुर्युः तेषां पापं नित्यदं वृद्धिमेति।
पुण्यं शक्त्या साधवो येतथैव तेषां पुण्यं वर्धतेऽक्षयकारी ॥६॥

प्रयाग की यात्रा के पुण्य को देवताओं के वर्षों से हजारों वर्षों में भी कोई नहीं कर सकता फिर मुझ ऐसे मनुष्य की तो भला सामर्थ्य ही क्या? यदि विधि पूर्वक प्रयाग की एक बार भी कोई प्रदक्षिणा करले तो वह ब्रह्माण्ड को फोड़कर सनातनलोक को चला जाता है। जो मनुष्य प्रयाग की तीनबार प्रदक्षिणा करले तो वह त्रिकाल में भी शोचनीय नहीं कहा जा सकता। प्रयाग में रहकर जो छोटे से भी छोटा पाप किया जाय वह वज्रलेप होकर शरीर में चिपक जाता है, छुटाने से भी नहीं छूटता, वह भी भक्ति भाव से प्रयाग प्रदक्षिणा करने पर छूट जायगा। पूर्व जन्मों में किए हुए पाप तथा अन्यतीर्थों में किए हुए पाप और जो प्रयाग में भी बहिष्कृत समझे गये हैं वे सभी प्रयाग प्रदक्षिणा करने से छूट जाते हैं। जो मनुष्य प्रयाग में आकर थोड़ा भी पाप करते हैं उनका वह थोड़ा पाप भी नित्य प्रति बढ़ता ही जाता है और जो प्रयाग आकर यथाशक्ति पुण्य करते है उनका वह पुण्य बढते २ अक्षय हो जाता है।

अंतिम प्रार्थना।

प्रयाग का महात्म्य प्रयाग की तीनों वेदियों का वर्णन हमने यथाविधि पुराणों के आधार पर वर्णन किया इसे पढ़कर हमारे आस्तिक और धनी मानी सज्जन इस पर विचार करें। यह कितनी दुःख की बात है कि जो प्रजापति का आदि क्षेत्र समझा जाता है, जहांपर महा प्रलय में भी न नाश होने वाला अक्षयवट है, जहां सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले माधव जी सदा सबको वरदेने को उद्यत रहते हैं, जिसमें सभीऋषि, महाऋषि, देवता नाग आदि आकर निवास करते हैं, जो शूलटंकेश्वर शिव की परम प्यारी भूमि है, जिसमें ब्रह्माजी ने अनेकों यज्ञ किए हैं, जो संपूर्ण तीर्थों का राजा समझाजाता है। सात मोक्ष दायिनी पुरियां जिनकी पट रानियां उनकी प्रदक्षिणा की

ओर से लोगों की इतनी उदासीनता करना यह एक बड़ा भारी अभाग्य है। अतः इन बातों पर विचार करने के लिए समस्त धर्म प्रेमी हिन्दुओं से हम प्रार्थना करते हैं।

(१) प्रयाग की पंचकोशी की परिक्रमा जो कर सके किया करे।

(२) इसके लिए लोगों को उत्साहित करे।

(३) उसका महात्म्य सुनावें। करने वालों की सहायता करें, तीर्थ यात्रा वालों को भोजन, जल, निवास स्थान और महात्म्य सुनाने का जो प्रबन्ध करते हैं उन्हें आधा फ़ल मिलता है। अतः जिन्हें ईश्वर ने इस योग्य बनाया है वे तीर्थ यात्रियों की हर प्रकार से सहायता करें।

(४) प्रयाग राज के तीर्थों के जहां २ पत्थर उखड़ गये हैं वहां फिरसे उनका नाम खुदवा कर गड़वाए जांय। जिन स्थानो की प्रतिमा खण्डित होगई हैं उनकी प्रतिमा फिरसे स्थापित की जांय।

(५) प्राचीन मंदिरों का फिरसे जीर्णोद्धार किया जाय।

तीर्थ राज प्रयाग में वापी, कूप, तड़ाग, धर्मशाला, देवालय बनवाने का अनन्त फल बताया गया हम समझते हैं प्राचीन तीर्थों के जीर्णोद्धार का फल इससे भी अधिक है। अतः इस ओर हिन्दुओं को विशेष ध्यान देना चाहिए।

अंतमें प्रयाग के प्रधान अष्ट नायकों का स्मर्ण करते हुए हम अपने इस वक्तव्य को समाप्त करते हैं।

त्रिवेणीं माधवं सोमं भरद्वाजं च वासुकम्।
वन्दे अक्षयवटं शेष प्रयागं तीर्थ नायकम्॥
तरणि तनूजा के तटपै तीरथ हैं जेते।
जाने जन्हु सुताके तारक तीरथ केते॥
वेणी, माधव, सोम, सरस्वति, भरद्वाज मुनि।
शेष, वासुकी अक्षय-वट प्रयाग राज पुनि॥
इनके पदकी धूलि को सादर शीश चढ़ाइ कर।
परिक्रमा पूरण करैं संगम लाल नहाइ कर॥

उरहना

[लेखक-श्री गंगा विष्णु पाण्डेय "विष्णु"

पंथ मांहि रोकै और टोकै बीच गैल मांहि, लौंग औ लुगाइन की आनै कछु कानैना।
छाछ को गिरावै दधि दूध दर कावैं ग्वाल, बालन खवावै हानि लाभ कछु जानैना॥
सारा सरकावै प्यारी चूरी चटकावै हम, लाख समझावैं चित्त होत कछु मानैना।
तारिया बजावै गारी दै दै भाग जावै, देख, नन्द रानी तेरो यह कारो कान्ह मानैना॥

सत्संग-सभा

(प्रथम भक्ति संतन कर संगा)

गुसांई तुलसीदास जी नौधाभक्ति में सत्संग को ही प्रथम भक्ति माना है। और साधक के लिए सत्संग की महान आवश्यकता बताते हुये-

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिये तुला इक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि,जो सुख लव सतसंग॥

कह कर सत्संग की महिमा गाई है। हम भी भक्ति के पाठकों समेत संतमडली के दर्शन करके सत्संग का लाभ उठाना चाहते हैं।

आइये पाठक! देखिये भक्त रसखान किसी की तलाश में फिर रहे हैं।

"ब्रह्ममें ढूंढो पुराणन वेदन भेद सुने चित चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो न कबौं कितहूं वह कैसो स्वरूप है कैसो सुभायन॥
हेरत हेरत हारि फिरयो 'रसखान' बतायो न लोग लुगायन।
देख्यो कहां वह कुंज कुटी तट बैठे पलोटत राधिका पायन॥

आप वेद पुराणों में सिर मार चुके और संसार भर की खाक छान चुके परन्तु 'वह' नहीं मिला, और जब वह जलवेनुमा हुवा तब कहां हुवा कालिंदी कूलपर कुंज कुटी में और वह भी राधिका के पैर पलोटते हुये।

प्रिया-प्रीतम की माधुरी छवि देखते ही आप लोट पोट होगये, इस एकांत सम्मिलन पर दिलो जान से कुरबान होगये और चुपके चुपके इस दृश्य को सदैव देखने के लिए यों प्रार्थना करने लगे-

मानुष हौं तो वही 'रसखान' बसौं मिलै गोकुल गांवके ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहां बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जु कियो सिर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं वही कूल कालिंदी कदंब की डारन॥

बलिहारी है आपकी इस चतुराई पर, मानुष और पशु जन्म की इच्छा करते हुये भी कहा बस मेरो? कह कर कुछ अनिच्छा प्रगट की है और आपकी प्रबल इच्छा दूसरी ही है मनमें उत्सुकता से सोचते है-

जो खग हौं तो बसेरो करौं वही कूल कालिंदी कदंब की डारन।

जो खग शरीर मिले तो उसी कदंब की डाली पर बैठकर प्यारे का अनुपम दृश्य देखा करूं जिसके नीचे वह नित्य ही-"बैठे पलोटत राधिका पायन" भगवान् रामचन्द्र जी शरणागत के रक्षक हैं। महर्षि वाल्मीकि जी का कथन है-

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

जो एकबार भी मेरी शरण आजाता है 'और मैं तुम्हारा हूं' यह याचना करता है उसे मैं प्राणी मात्र से अभय देदेता हूं यह मेरा व्रत है।

महर्षि के इन वाक्यों को गुसाईं जी ने खूब समझा है तभी तो हाथ धोकर सरकार के पीछे पड़गये हैं और भगवान को आपसे पिंड छुड़ाना

मुश्किल होगया है कहते हैं-

तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नहि आरत हर तोसों॥
ब्रह्म तूहीं जीव, तू ही ठाकुर हौं चेरो।
तात मात गुरु सखा तू सब विधि हित मेरो॥
तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावे।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरण शरण पावे॥

महाराज चाहे जौनसा नाता मान लीजिये मैं हर प्रकार से तुम्हारा हूं। और तुम मेरे हो। "तवास्मीति च याचते" यह वाक्य तो जो कहेगा जो किसी दूसरे का हो और अपने मतलब के लिये तुम्हारा बने, मैं तो तुम्हारा हूं ही फिर मुझे यह कहने की क्या आवश्यकता है कि मैं तुम्हारा हूं। अगर आप एक नाते से अपना नहीं समझते तो दूसरे से समझ लीजिये, दूसरे से नहीं समझते तीसरे से समझ लीजिये। समझिये किसी प्रकार से पर समझ लीलिये, और ज्यों त्यों करके तुलसी को 'शरण' दीजिये।

इतना कह चुकने पर भी आपको सन्तोष नहीं है पुनः कहते हैं-

"तू गरीब को निवाज हौं गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपाल तुलसीदास मेरो"॥

गरीब निवाज का काम गरीबों की रक्षा करना है। रक्षक यह नहीं देखता कि यह गरीब कौन है किस देश, किस जाति और किस सुसायटी का गरीब है वह तो, इन बातों को छोड़ कर ही गरीब की रक्षा करता है। महाराज इस नाते से तो आप मेरी रक्षा करेंगे ही परन्तु मुझ में तो एक खिपित भी है और वह यह कि "हौं गरीब तेरो" मैं तुम्हारा गरीब हूं। दूसरे का नहीं, तुम्हारा गरीब हूं। इसलिये:-

"बारक कहिये कृपाल तुलसी दास मेरो"।

'तुलसीदास मेरा है' बस यह एकबार कहदो धन्य हो तुलसीदास जी, सरकार से 'तवास्मि' मैं तुम्हारा हूं कहने की बात टाल कर उनसे कहलाते हो कि तुम्ही कहदो तुलसीदास मेरा है। भगवान् से कहलाकर रजिष्टर्ड होना चाहते हो। वाह किस सफाई से मतलब हल किया है-

"बारक कहिये कृपालु तुलसीदास मेरो"।

× × × ×

शृंगार रसके रसिया कविवर विहारीलाल जी रसिक राज त्रिभंगीलाल जी से अपनी कुटिलता को किस सफाई से पेश कर रहे हैं।

करौ कुवत जग कुटिलता तजौं न दीन दयाल।
दुखी होउगे सरल हिये बसत त्रिभंगी लाल॥

महाराज मेरा हृदय कुटिल है सो ठीक है मैंने उसे कुटिल बनाया है क्योंकि आपको उसमें धारण करना है जब आप स्वयं कुटिल (त्रिभंगी) है तब सरल हिये में कैसे आते इसलिये, मैंने आपको टेढ़ा समझकर ही अपना हृदय भी टेढ़ा बनालिया है।

अपने ऐबों की सफाई पेश करने के लिये इससे अधिक सबूत क्या होगा।

× × × ×

चलते हुये प्रज्ञाचक्षु सूरदास जी की भी सुन लीजिये, देखिये आप अपने श्याम को किस प्रकार से खोटी खरी सुना रहे हैं।

"पतित पावन हरि बिरद तुम्हारो कौने नाम धरयो।
हौं तो दीन दुखित अति दुर्बल द्वारे रटत परयो॥
चारि पदारथ दियें सुदामहिं तंदुल भेंट धरयो।

द्रुपद सुता की तुम पति राखी अंबरदान करयो ॥
संदी पन सुत तुम प्रभु दीने विद्या पाठ पढ़यो ।
'सूर' की विरियां निठुर भये प्रभु मोते कछु न सरयो ॥

तुम्हारा पतित पावन नाम किस बेवकूफ ने रखदिया, तुमतो कोरे मतलबी हो सुदामा से चावल लेकर द्रोपदी से वस्त्र लेकर औंह सांदीपन से विद्या लेकर उनको कुछ दिया है। रिश्वत लेकर रक्षा करना भी कोई बड़ाई की बात है। मैं आपको कुछ न देसका, मुझसे आपका कोई काम न सरा, बस आप फौरन निठुर कर बैठगये। कितना सरस और भाव भरा पद है।

'सूर की विरियां निठुर भये प्रभु मोते कछु न सरो"।

(दुर्गाप्रसाद गुप्त)

यही है इच्छा हे भगवन्

अचानक हृदय भवन में आज, विराजे आकर नन्द कुमार ।
निछावर नयन हुए तज लाज, गया बंध अश्रु कणों का तार ॥
लिया चित्त में बस के चित चोर, देखते ही बनता था रूप ।
लगे नयना मुखड़े की ओर, निहारा मोहन रूप अनूप ॥
उधर कुछ सुनी मधुर सीतान, मेरे कानों में हुई प्रवेश ।
बनी मतवाली छूटा ध्यान, हृदय में पायेना हृदयेश ॥
विकल होकर फिर तो धुनि ओर, भगी मैं बन्द हुई धुनि हाय ।।
किया तूने क्या ? यह चित चोर ! करूं क्या बतला मैं निरुपाय ॥
बहुत ढूंढा कुंजों में जाय, फिरी बन बन में जमुना तीर ।
हिये में झलक दिखाई आय, वहीं बैठी मैं धरके धीर ॥
हरष में देखा करके ख्याल, निकट भागा कुंजों की ओर ।
करी कुंजों की फिर पड़ताल, हृदय में बैठा पाया चोर ॥
बने हृद तंत्री धुनि के साथ, सुनादो वही सुरीली तान ।
रहो हिय मंदिर में नित नाथ, यही है इच्छा हे भगवान ॥

—दुर्गाप्रसाद गुप्त

योगसाधन

[ले०—स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती]

११६२. इस जीवन के समुद्र में इस स्थूल शरीर नौका है। इस जहाज़ का कप्तान प्रत्येक आत्मा है। आत्मा या ब्रह्म जो कि आनन्द, शान्ति, अमरत्व और ज्ञान का स्थान है उस पार का किनारा है। भले प्रकार किया हुआ ध्यान चप्पू है। तृष्णा और वासनाएं मगर और मछलियां हैं। काम, लोभ, क्रोध आदि बरफ की पहाड़ियां हैं। सत्व, रजस और तमस जीवन रूपी समुद्र की लहरें हैं।

११६३. संसार में चार प्रकार की हट प्रसिद्ध हैं। बालकों की बालहट, स्त्रियों की स्त्री हट, राजाओं की राजहट, और योगियों की योग हट। सात्विक हट से इच्छाशक्ति, सहनशक्ति और सफलता में वृद्धि होती है। तामसिक हट से अधः पतन होता है।

११६४. कर्म, भाव और बुद्धि तीन घोड़े हैं जो कि इस शरीर रूपी रथ से बन्धे हुए हैं। यह तीनों साथ २ एक ही संयम में काम करते रहने में जीव के लिए कल्याण कारी हो सकते हैं।

११६५. परमात्मा और शान्ति एक ही अर्थ के वाचक हैं। जो पुरुष काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार से रहित हैं परमात्मा उनके निकट ही निवास करता है। यति वह तपस्वी है जिसने अपनी इन्द्रियों पर संयम कर लिया है। उसने अपने दोषों को जीत लिया है। साधारण तौर पर सन्यासी को भी यति कहते हैं। इन्द्रयों के स्वामी को यतेन्द्र कहते हैं।

११६६. शान्ति, सन्तोष, संयम, हर्ष शोक से रहित और अभय होना जीवन मुक्त के पांच लक्षण हैं। कन्द मूल पर तुम्हारा जीवन निर्भर नहीं रह सकता। जिनको अध्यात्म जीवन का कुछ ज्ञान नहीं है और केवल भावुक पुरुष हैं वही इस प्रकार की मिथ्या भावना करते रहते हैं कि मनुष्य कन्द, मूल पर जीवन निर्वाह कर सकता है।

११६७. जहां तुम जाओगे वहां ही तुम्हारा चित्त, वासनाएं और संस्कार तुम्हारे साथ रहेंगे। राग द्वेष सब जगह मौजूद है हिमालय की कन्द्राएं भी राग द्वेष से रहित नहीं मिलेंगी। अपनी अन्तरात्मा से अपने पास शुद्ध व पवित्र वायु मण्डल की स्थापना करो। केवल उसी समय तुम सब स्थानों में पवित्र व शुद्ध रह सकोगे।

११६८. कुछ रियास्तों में प्रधान मंत्री ही सब कुछ होता है। वह सब कुछ बना और बिगाड़ सकता है। महाराज केवल नाम मात्र को होता है। इसी प्रकार सांख्य पुरुष केवल नाम मात्र है। उसका तो वर्तमान रहना ही वांछनीय है। प्रकृति ही सब

कुछ है। वही समस्त रचना करने वाली है।

११६९. शिक्षित नवयुवक और डाक्टर ऋषि केश और उत्तर काशी में मिट्टी का प्याला और भगवें वस्त्र धारण किए हुए आते हैं। वह चाहते हैं कि ध्यान के लिए गहन गुफाएं मिल जावें जहां प्राणायाम का साधन किया जावे। कोई राजकुमार और विज्ञान विशारद पंजाब में युवतियों की तलाश में जाते हैं। क्या यह संसार सुख और दुःख से पूर्ण है। यदि इस संसार में सुख ही सुख है तो क्यों शिक्षित पुरुष जंगलों में टक्कर मारते फिरते हैं। माया विचित्र है। मोह आश्चर्य जनक है। संसार और जीवन की पहेली को समझने की कोशिश करो। विवेक उत्पन्न करो, सत्संग करो। आत्मा के गुणों को मालूम करो। योग वशिष्ठ और उपनिषद् का पाठ करो तब तुमको जीवन का समस्त रहस्य समझ में आवेगा। इस संसार में सुख तो लेश मात्र ही मौजूद है।

११७०. बाह्य जगत में तो केवल विद्युत प्रवाह है, संसार विद्युत कणों से भरापड़ा है। यह सब कुछ बिजली ही बिजली है। भिन्न २ रूप भिन्न २ विद्युत प्रवाह की लहरों में भिन्न२ रूप धारण किए हुए दृष्टि गोचर होरहे हैं यह विज्ञान वेत्ताओं का सिद्धान्त है। यह कहना कि मुझे अभिमान नहीं है स्वयं बड़ा अभिमान है।

११७१. इस संसार का त्याग करदो, मोक्ष की इच्छा को भी छोड़दो। त्याग का भी त्याग करदो फिर तुम्हारा अपना आप रह जावेगा।

११७२. ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म बन जाता है। 'ब्रह्म वित ब्रह्मैव भवति, यह श्रुति बड़े बल पूर्वक ढंढोरा करती है।

११७३. एक कामी युवा पुरुष रात दिन चिन्तन करता रहता है कि मुझे अपनी प्रिय पत्नि से मिलने का अवसर कब मिलेगा? वह गृहस्थी जिसमें विवेक का प्रादुर्भाव होगया है यह विचार करता रहता है कि मेरा स्त्री से कब पीछा छुटेगा। और वनमें जाकर मैं कब अपनी तपस्या आरम्भ करूंगा। मन ही बन्ध और मोक्ष का कारण है। इस मन को मारकर प्रेम से आत्मा में निवास करो।

११७४. सुन्दर वस्त्र पहनने से शरीर की शोभा नहीं होती। यह शरीर अपवित्रता का खज़ाना है अपवित्र शरीर को ढकने के लिए ही वस्त्र की आवश्यकता होती है। सादा और पवित्र वस्त्र पहनो। गम्भीर विचार रक्खो। शुद्ध, पवित्र और भक्ति के जीवन से ही मनुष्य को आनन्द मिल सकता है।

११७५. आत्मा नित्य है, निर्विकार है, यह प्रज्ञान घन, चिद् ज्ञान और विज्ञान घन है, यह अविनाशी है।

११७६. आत्मा का शरीर नहीं है। यह अतनु, अमूर्त, निराकार है। ऐसी अवस्था में इसे जरा और मृत्यु कैसे हो सकती है? आत्मा, अजर, अमर और अविनाशी है। आत्मा निरवयव है इस लिए यह अकर्ता और निष्क्रिय है।

११७७. इन्द्रिएं, शरीर, मन, प्राण और बुद्धि यह अविद्या के विकार हैं। यह उपाधियां हैं। वेदान्त सिद्धान्त के अनुसार इनका निराकरण करो। नेति, के सिद्धान्त से जो शेष रह जावे वही ब्रह्म है।

इस वाक्य को रटो केवलोहम्। भाव सहित बार २ इसका अभ्यास करने से आत्मानन्द का अनुभव कर सकते हो।

११७८. मेरे प्यारे पुत्र सुशील इस अभ्यास को अभी से आरम्भ करदो।

११७९. हम ज्ञाता को किस प्रकार जान सकते हैं? ज्ञाता सदैव साक्षी रूप रहता है। तुम ज्ञेय पदार्थों को जान सकते हो। नित्य, निरन्तर प्रेम और श्रद्धा से ध्यान करने से तुम आत्मा का साक्षात्कार कर सकते हो।

११८०. जहां दो हैं वहां ही द्वि भाव दिखाई देता है परन्तु जब आत्मा ही शेष रह जाता है फिर दो दिखाई नहीं देते। द्वैत में भय है, द्वैत में ही लड़ाई झगड़े हैं, इसी में अज्ञान है, यह शोक, मोह, रोग और मृत्यु को लाने वाला है। द्वैत का नाश करो, इस परदे को फाड़ डालो, मेरे प्यारे मोहन अद्वैत में शान्ति पूर्वक निवास करो।

११८१. आलन्दी के प्रसिद्ध योगी श्री ज्ञानदेव जी ने गीतापर टीका की है जिसे ज्ञानेश्वरी टीका कहते हैं यह टीका उन्होंने १६ वर्ष की आयु में की थी। वह जन्म से ही सिद्ध थे। तुमभी यदि ठीक मार्ग पर चलो तो सिद्ध बन सकते हो। जो बात एक को प्राप्त हो सकती है वह दूसरे को भी अवश्य प्राप्त हो सकती है।

११८२. जो सुख और दुःख में समान भाव से स्थित रहे वह मोक्ष के योग्य होता है। सम दुःख सुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते। जो सहन शील हो सुख दुःख में समान रहे और धीर हो वह अमरत्व को प्राप्त होता है। गीता अ० २।

११८३. अपने घरमें बहुधा नंगे पांव चलना चाहिए। शरीर को शारीरिक श्रम के लिए तय्यार करना चाहिए। नौकरों से सहायता की आशा मत रक्खो। अपने समस्त कपड़े आप धोने चाहिये। श्रम के महत्त्व को समझो। औषधी उसी अवस्था में लेनी चाहिए जब कि उनकी नितान्त आवश्यकता होवे। सहन शक्ति को शनै २ बढ़ाना चाहिए।

११८४. मौनी बाबा बड़ा तितिक्षु है। वह वैरागी है। वह चित्र कूट से दो मील जंगल में रहता है। वह गरमी में सवेरे ८ बजे से साम के ४ बजे तक कड़ी धूपमें खड़ा रहता है। उस सन्त में कितनी आश्चर्य जनक सहन शक्ति है।

११८५. आत्मा काल रहित, देश रहित और अनन्त है। यह ज्ञान स्वरूप है। यह प्रकाश स्वरूप है। यह ज्योति स्वरूप है। सब वेदान्त के जिज्ञासु ब्रह्मानुभव प्राप्त करने के लिए इस आत्मा का अनुसन्धान करते हैं। यह तरम वस्तु कहलाता है। इससे अमरत्व की प्राप्ति होती है।

११८६. अज्ञानी को शिक्षा देना सहल है उससे भी अधिक आसान उसको शिक्षादेना है जो नम्र है, जिसमें ज्ञान के ग्रहण करने की शक्ति है और जो ज्ञान का प्यासा है परन्तु उस तुच्छ, निर्बुद्धि और अहंकारी पुरुष को शिक्षादेना बड़ा कठिन काम है जो अल्पज्ञान से ही अपने को बड़ा ज्ञानी समझता है, जो व्यर्थ ही अपने को बड़ा आदमी समझता है और जिसको यह भ्रम है कि मैं सब कुछ जानता हूं। ऐसे अत्यन्त अहंकारी और घमण्डी पुरुष को स्वयं ब्रह्मा भी शिक्षा देने में असमर्थ है।

भजन

पौढ़े श्याम जननी गुण गावत ॥
आज गयो मेरो गाय चरावन,
यह कहि मन हुलसावत ॥
कौन पुण्य तप ले मैं पायो,
ऐसो सुन्दर बाल कहावत ॥
हर्ष २ के देत सखन को,
सूर सुमन की माल सुहावत ॥

२

अबकी राख लेहु भगवान् ॥
हम अनाथ बैठी द्रुम डरियां,
पारधी साध्यो बान ।
ताके डर निकसन चाहत हौं,
ऊपर रह्यो शचान ॥
दोऊ भान्ति दुःख भयो कृपानिधि,
कौन उबारे प्रान ॥
सुमरत ही अहि डस्यो पारधी,
लाग्यो तीर शचान ॥
सूरदास गुण कहं लग वरणों,
जै जै कृपा निधान ॥

३

हरि बिन को रखे पति मेरी ॥
अन्ध को अन्ध महा दुःशासन, आन सभा में घेरी ॥
भीष्म द्रोण कर्ण से बैठे, इन हूं नेक न हेरी ॥
अब मति भ्रष्ट भई सबहिन की पकर लई ज्यों चेरी
एक विश्वास यही दृढ़ मेरे कृष्ण कृष्ण कर टेरी ॥
सूरदास प्रभु बसन बढ़ाये, हुगयो पर्वत ढेरी ॥

४

तुम सुनियों हे बलिराजा वसुधा काहू की न भई ॥
सतयुग में हिरणाकुश राजा चारों कूट मही ।
अतीव प्रचण्ड महीपति राजा वाहू के संग न गई ॥
त्रेता में रावण भयो राजा कञ्चन कोट गई ॥
इक लख पूत सवालख नाती लकड़ी काहू न दई ॥
द्वापर में दुर्योधन राजा नौलख भीड़ सही ।
सोरा योजन वाके छत्र दुलत रहे माटी गिधन लई ॥
सतयुग त्रेता द्वापर कलियुग चारों युगन सही ॥
कहत सूर वही नर झूठे जिन यह अपनी कही ॥

५

रे मन जन्म पदारथ जात ॥ टेक ॥
बिछुरे मिलन बहुरि कब ह्वे है,
ज्यों तरवर के पात ॥
सन्निपात कफ कंठ विरोधी,
रसना टूटी बात ॥
प्रान लिये जम जात मूढ़ मति,
देखत जननी तात ॥
छिन इक मांहि कोटि जुग बीतत,
पीछे नरक की बात ॥
यह जग प्रीति सुआ सेमर की,
चाखत ही उड़ जात ॥
जम के फन्द नहीं पड़ बौरे,
चरनन चित्त लगात ॥
कहत सूर विरथा यह देही,
अन्तर क्यों इतरात ॥

REG DNo. L 2071

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४.	वेदोपनिषद्		।=)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	=)।
६	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	=)॥।
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,,	=)
९.	सत्य शब्द संग्रह	,,	॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	=)॥।
११.	शब्द सार संग्रह	,,	=)।
१२.	शब्दसंग्रह	,,	=)॥
१३.	सारसंग्रह	,,	।)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	।=)
१५.	मनुस्मृति सार	,,	=)।
१६.	भक्ति चिन्तामणि	,,	।=)।
१७.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१८.	भगवदंक	,,	॥।)
१९.	गवांक	,,	१)
२०.	महात्मांक	,,	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।